[2017] 13 एस. सी. आर. 1009

झारखंड राज्य और अन्य

बनाम

हिंदूस्तान कंस्ट्रक्शन कं. लिमिटेड

(2006 की सिविल अपील संख्या 1093)

14 दिसंबर, 2017

[दीपक मिश्रा, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, ए. के. सिकरी, ए. एम. खानविलकर, डॉ. डी. वाई. चंद्रचूड़ और अशोक भूषण, न्यायमूर्तिगण]

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996:धाराएँ31, 30 और 33-न्यायालयों की अधिकारिता-न्यायालय के नियम के अनुसार, मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय देने के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा आवेदन की विचारनीयता, जब वह मध्यस्थता कार्यवाही पर अपना अधिकार बरकरार रखता है-अभिनिर्धारित किया गयाःउच्चतर न्यायालय से कानून में यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह इस आधार पर अधिकार क्षेत्र ग्रहण करे कि वह एक उच्च न्यायालय है और आगे यह राय देते हुए कि सभी दलीलें खुली हैं-केवल इसलिए कि एक उच्च न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति करता है या निर्देश जारी करता है या मध्यस्थ पर कुछ नियंत्रण बनाए रखता है जिससे उसे इस न्यायालय में पंचाट दाखिल करने की आवश्यकता होती है, इसे न्यायालय के रूप में नहीं माना जा सकता है।पहला उदाहरण 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा के विपरीत होगा जैसा कि शब्दकोश खंड के साथ-साथ धारा 31(4) में भी उपयोग किया गया है। यह न्यायालय किसी वादी के अपील करने के अधिकार को यह कहते हुए कम नहीं कर सकता है कि इस न्यायालय के लिए दरवाजे खुले हैं और इसे एक मूल न्यायालय के रूप में मानने के लिए-जब मध्यस्थ को अधिनियम के तहत

नियुक्त नहीं किया जाता है और मामले को उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है और अंत में, एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है और कुछ निर्देश जारी किए जाते हैं, तो यह कहना उचित नहीं होगा कि ऊपरी न्यायालय के पास आपत्तियों से निपटने का अधिकार क्षेत्र है धारा 30 और 33 के तहत किसी कानून के तहत प्रदत्त न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को किसी उच्च न्यायालय के कारण स्थानांतरित करने या लचीला बनने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। एक अलग तरीके से मामले में हस्तक्षेप।

अपील का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने अवधारित कियाः-

अभिनिर्धारित:1.1 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 31 न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है। उप-धारा (1) में कहा गया है कि अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, उस मामले में अधिकार क्षेत्र वाले किसी भी न्यायालय में एक पंचाट दायर किया जा सकता है जिससे संदर्भ संबंधित है। उप-धारा (2) में कहा गया है कि इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित किए जाने के अलावा, उस समय लागू किसी अन्य कानून में कुछ भी निहित होने के बावजूद, समझौते के पक्षों या उनके तहत दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच किसी पंचाट या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के बारे में सभी प्रश्नों का निर्णय उस अदालत द्वारा किया जाएगा जिसमें समझौते के तहत पंचाट किया गया है, या दायर किया जा सकता है, और किसी अन्य अदालत द्वारा नहीं किया जाएगा। आईपीआरए 47] 11044-डी-एफ]

1.2 धारा 31 (4) की व्याख्या करते हुए, कुंभ मावजी मामले में तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त उप-धारा का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उप-धारा (3) से आगे जाना है, अर्थात, न केवल संबंधित पक्ष को उस अदालत में ऐसे आवेदनों के लिए अनन्य अधिकार क्षेत्र निहित करने के लिए एक अदालत में सभी आवेदन दायर करने का दायित्व डालना, जिसमें पहला आवेदन पहले ही किया जा चुका है। तीन-न्यायाधीशों की पीठ

द्वारा दी गई व्याख्या इस आशय की है कि धारा 31 के एक व्यापक दृष्टिकोण पर कि जहां पहली उप-धारा उस न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारण करती है जिसमें एक पंचाट दायर किया जा सकता है, उप-धारा (2), (3) और (4) का उद्देश्य उस अधिकार क्षेत्र को तीन अलग-अलग तरीकों से प्रभावी बनाना है, (1) एक न्यायालय को किसी पंचाट या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के संबंध में सभी प्रश्नों से निपटने का अधिकार सौंपकर, (2) संबंधित व्यक्तियों को एक न्यायालय में मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन या अन्यथा ऐसी कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदनों को दायर करने का दायित्व देकर, और (3) उस न्यायालय में अनन्य अधिकार क्षेत्र निहित करके जिसमें मामले से संबंधित पहला आवेदन होता है।न्यायालय का आगे का विश्लेषण यह है कि उप-धारा (4) का संदर्भ यह इंगित करता प्रतीत होता है कि उप-धारा का उद्देश्य मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक ही सीमित नहीं था। प्रभावी और अनन्य अधिकारिता के साथ एक एकल न्यायालय की आवश्यकता, और तीन प्रावधानों के संयुक्त संचालन द्वारा संघर्ष और हाथापाई से बचने के लिए समान रूप से आवश्यक है कि क्या प्रश्न मध्यस्थता के लंबित होने के दौरान या मध्यस्थता के बाद उत्पन्न होता है या मध्यस्थता शुरू होने से पहले।ऐसा कोई कल्पनीय कारण नहीं है कि विधायिका ने उप-धारा (4) के संचालन को केवल मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक सीमित रखने का इरादा किया है क्योंकि "किसी भी संदर्भ में" वाक्यांश को "मध्यस्थता के संदर्भ के दौरान" अर्थ के रूप में लिया जाना है। [पैरा 48) (1044-एच; 1045-ए-ई)

1.3 न्यायालय ने 'किसी भी संदर्भ में' वाक्यांश की व्याख्या 'मामले या संदर्भ के कार्यप्रणाली में' करने के लिए की है जिसका अर्थ मध्यस्थता के संदर्भ के मामले में होगा और इसमें वह चरण भी शामिल होगा जब अंतिम निर्णय दिया जाता है।गुरु नानक फाउंडेशन में 'न्यायालय' शब्द के अर्थ के संबंध में अधिनियम की धारा 31 (4) का उल्लेख करके और यह आधार मानते हुए कि सर्वोच्च न्यायालय भी पहली बार का न्यायालय बन सकता है,

अगर उसने कार्यवाही पर नियंत्रण बनाए रखा है, इसे अलग किया गया है।शब्दकोश खंड में 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा और अधिनियम की धारा 31 (4) में प्रयुक्त 'न्यायालय' शब्द के अर्थ के अवलोकन और प्रावधानों के संदर्भ में इसकी सराहना करने और अधिनियम की योजना पर ध्यान देने पर, गुरु नुनाक फाउंडेशन के तर्क में रखा गया निर्माण एक मौलिक भ्रांति से ग्रस्त है। अधिनियम की धारा 31 (4) में उपयोग की जाने वाली भाषा गैर-अस्थाई खंड से शुरू होती है। प्रावधान के उक्त भाग को पाठगत संदर्भ में समझना होगा क्योंकि मुख्य रूप से प्रावधान एक सक्षम करने वाला है और वास्तविक इरादा जो अभिव्यंजक भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, वह यह है कि जहां अधिनियम के तहत किसी संदर्भ में कोई आवेदन किया गया है, उस न्यायालय के संबंध में जिसके पास किसी आवेदन को स्वीकार करने की क्षमता है, अकेले उस न्यायालय के पास मध्यस्थता कार्यवाही पर अधिकार क्षेत्र होगा। उक्त प्रावधान के पीछे का उद्देश्य अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में टकराव से बचना और अधिनियम की योजना को ध्यान में रखते हुए अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय की निश्चितता के इरादे को लागू करना है, जिसका उद्देश्य मध्यस्थता की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना और निर्णय के बाद की कार्यवाही की अंतिमता को देखना है। इसलिए, यह स्वीकार करना मुश्किल है कि सर्वोच्च न्यायालय मूल अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर सकता है, केवल कार्यवाही पर नियंत्रण के कारण, क्योंकि मूल अधिकार क्षेत्र संविधान के अनुच्छेद 32 और 131 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान किया गया है। उक्त मूल अधिकारिता इस न्यायालय को उस विवाद के संबंध में उपलब्ध नहीं है जिसका उल्लेख अनुच्छेद 262 इस में मिलता है। [पैरा 49) (1045-एफ-एच; 1046-ए-डी)

1.4 यह सवाल उठाया जाना आवश्यक है कि क्या यह न्यायालय "मध्यस्थता कार्यवाही पर नियंत्रण रखें" अभिव्यक्ति का उपयोग करके मूल अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर सकता है। न्यायालय ने 'न्यायालय' शब्द की व्याख्या करके अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर लिया है जैसा कि एस में उपयोग किया गया है।31(4).व्याख्या विधानमंडल के प्रावधान और इरादे में

उपयोग की गई भाषा के अनुरूप नहीं है। यह स्पष्ट है कि संदर्भ पर विचार करने के लिए सक्षम न्यायालय के पास आपत्तियों से निपटने का अधिकार क्षेत्र होगा पंचाट या कोई पंचाट के बाद की कार्यवाही। [कंडिका 51] [1047-सी-डी]

1.5 यह कथन कि उसके लिए सभी दलीलों को उठाने के लिए दरवाजा खुला रखा जा रहा है, जो एक प्रारंभिक समन में एक कार्यवाही में उठाया जा सकता है, सही नहीं है क्योंकि उच्च न्यायालय से इस आधार पर अधिकार क्षेत्र ग्रहण करने की अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह एक उच्च न्यायालय है और आगे यह राय देते हुए कि सभी दलीलें खुली हैं। विधायिका ने अपने विवेक से अधिनियम की धारा 39 के तहत एक अपील प्रदान की है। केवल इसलिए कि कोई उच्चतर न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति करता है या निर्देश जारी करता है या मध्यस्थ को इस न्यायालय में पंचाट दाखिल करने की आवश्यकता देकर उस पर कुछ नियंत्रण बनाए रखा है, इसे पहली बार अदालत के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह शब्द 'न्यायालय' की परिभाषा के विपरीत होगा जैसा कि शब्दकोश खंड के साथ-साथ धारा 31 (4) में उपयोग किया गया है। सीधे शब्दों में कहें तो यह सिद्धांत स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह न्यायालय यह कहकर एक वादी के अपील करने के अधिकार को कम नहीं कर सकता है कि इस न्यायालय के लिए दरवाजे खुले हैं और इसे एक मूल न्यायालय के रूप में माना जा सकता है। इस न्यायालय में मूल अधिकार क्षेत्र कानून में निहित होना चाहिए।जब तक यह इतना निहित नहीं है और अदालत यह नहीं मानती है, तब तक अदालत वास्तव में उस मंच को बाधित करती है जो विधायिका द्वारा एक वादी को प्रदान किया गया है। इसके अलावा, उक्त सिद्धांत कुंभ मावजी में जो कहा गया है, उसके विपरीत भी है। यह न्यायालय सहमति पर एक मध्यस्थ का संदर्भ दे सकता है, लेकिन इसे एक कानूनी सिद्धांत के रूप में मान सकता है कि वह आपत्तियों को भी स्वीकार कर सकता है क्योंकि मूल न्यायालय अधिकार क्षेत्र से संबंधित एक मौलिक भ्रांति को आमंत्रित करेगा। [कंडिका 57] [1050-एफ जी; 1051-ए-सी]

1.6 जिस न्यायालय के पास पहले आवेदन पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र है, वह इस तथ्य से निर्धारक है कि किस न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र है और वह अधिकार क्षेत्र बरकरार रखता है। जब अधिनियम के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की जाती है और मामले को उच्च न्यायालय या उस मामले के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है और अंततः एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है और कुछ निर्देश जारी किए जाते हैं, तो यह कहना अनुचित और असंगत रुप से होगा कि धारा 30 और 33 के तहत दायर आपत्तियों से निपटने का अधिकार क्षेत्र उच्च न्यायालय के पास है। किसी कानून के तहत प्रदत्त न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को मामले में उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण एक अलग तरीके से स्थानांतरित करने या लचीला बनने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। [कंडिका 58] [1051-ई-जी] [1051-ई-जी

1.7 उचित पीठ के समक्ष मामले को सूचीबद्ध करने का निर्देश जारी किया गया होगा। लेकिन यह आवश्यक नहीं है क्योंकि अपीलार्थी-राज्य ने दीवानी न्यायालय के समक्ष आपत्ति दायर की है। यदि राज्य की आपत्ति अभिलेख पर नहीं है, तो राज्य के साथ-साथ प्रतिवादी को निर्धारित अवधि के भीतर अपनी-अपनी आपत्तियां दर्ज करने की स्वतंत्रता दी जाती है। आपत्तियों पर उनकी अपनी खूबियाँ निर्णय लिया जाएगा[कंडिका 60] [1052-बी]

मध्य प्रदेश राज्य बनाम सेठ एंड स्केल्टन (पी) लिमिटेड **(1972) 1 एस. सी. सी. 702:[1972] 3 एस. सी. आर. 233;** **गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह एंड संस **[1982] 1 एस. सी. आर. 842-खारिज।**

भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम अन्नपूर्णा कंस्ट्रक्शन **(2008) 6 एससीसी 732: [2008] 3 एस. सी. आर. 1124;** पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम संबद्ध ठेकेदार **(2015) 1 एस. सी. सी. 32:[2014] 10 एससीआर 426;** राजस्थान राज्य बनाम नव भारत निर्माण कंपनी (2) **(2010) 2 एससीसी 182:[2010] 1 एस. सी.**

आर. 312; मैकडर्मोट इंटरनेशनल आई. एन. सी. बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड और अन्य **(2005) 10 एस. सी. सी. 353;** कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ और एक अन्य **(1977) 4 एस. सी. सी. 608:[1978] 2 एससीआर 1;** ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक और एक अन्य **(1988) 2 एस. सी. सी. 602:[1988] 1 पूरक** एससीआर गरिकापति वीराया बनाम एन. सुब्बैया चौधरी और अन्य **1957 एस. सी. आर. 488:ए. आई. आर. 1957 एस. सी. 540;** उपहार कर आयुक्त, मद्रास बनाम एन. एस. गेट्टी चेट्टियार **(1971) 2 एस. सी. सी. 741;** बिक्री कर आयुक्त, गुजरात राज्य बनाम संघ चिकित्सा एजेंसी **(1981) 1 एस. सी. सी. 51:[1981] 1 एस. सी. आर. 870;** व्हर्लपूल निगम बनाम पंजीयक व्यापार चिह्न, मुंबई और अन्य **(1998) 8 एससीसी 1:(1998) 2 पूरक। एस. सी. आर. 359;** * कुंभा मावजी बनाम भारतीय अधिराज्य (अब भारत संघ) **(1953) एस. सी. आर. 878:ए. आई. आर. 1953 एस. सी. 313;** पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम लुधियाना स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड **(1993) 1 एस.सी.सी. 205:(1992) 3 पूरक एस. सी. आर 275;** सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार और अन्य बनाम सी. टी. ए. सी. टी. सुब्रमण्यम चेट्टियार **(1960) 2 एस. सी. आर. 209:ए. आई. आर 1960 एस. सी. 307;** कर्नाटक राज्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य **(2017) 3 एस. सी. सी. 362: [2016) 8 एससीआर 499;** उड़ीसा राज्य बनाम भारत सरकार और एक अन्य **(2009) 5 एस. सी. सी. 492: (2009) 1 एस. सी. आर. 992;** नदियों का नेटवर्क, इसके कानूनी मामले में सं. **(2012) 4 एस. सी. सी. 51:(2012) 1 एस. सी. आर. 1118;** प्रेम चंद गर्ग और एक अन्य बनाम आबकारी आयुक्त, यू. पी. और अन्य **[1963] पूरक 1 एस. सी. आर. 885:ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 996;** शिव शक्ति को ऑप हाउसिंग सोसाइटी नागपुर बनाम स्वराज डेवलपर्स और अन्य **(2003) 6 एससीसी 659:(2003) 3 एससीआर 762;** विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

और अन्य **(2016) 9 एससीसी 541:[2016] 8 एससीआर 872;** नाहर इंडस्ट्रियल एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम हांगकांग और शंघाई बैंकिंग निगम **(2009) 8 एससीसी 646:[2009] 12 एस. सी. आर. 54-संदर्भित।**

मामला कानून संदर्भ

[2008]3 एस सी आर 1124	**संदर्भित**	**पैरा 6**
[2014]10 एस सी आर 426	**संदर्भित**	**पैरा 6**
[2010]1 एस सी आर 312	**संदर्भित**	**पैरा 6**
[2005]10 एस सी आर 353	**संदर्भित**	**पैरा 7**
[1978]2 एस सी आर 1	**संदर्भित**	**पैरा 10**
[1988]1 पूरक एस सी आर 1	**संदर्भित**	**पैरा 10**
[1957] एस सी आर 488	**संदर्भित**	**पैरा 10**
[1971]2 एस सी आर 741	**संदर्भित**	**पैरा 11**
[1981]1 एस सी आर 870	**संदर्भित**	**पैरा 11**
[1998]2 पूरक एस सी आर 359	**संदर्भित**	**पैरा 11**
[1953] एस सी आर 878	**संदर्भित**	**पैरा 12**
[1992]3 पूरक एस सी आर 275	**संदर्भित**	**पैरा 12**
[1960]2 एस सी आर 209	**संदर्भित**	**पैरा 16**
[2016]8 एस सी आर 499	**संदर्भित**	**पैरा 49**

[2009]1 एस सी आर 992	**संदर्भित**	**पैरा 49**
[2012]1 एस सी आर 11118	**संदर्भित**	**पैरा 49**
[1963]पूरक 1 एस सी आर 885	**संदर्भित**	**पैरा 54**
[2003]3 एस सी आर 762	**संदर्भित**	**पैरा 56**
[2016]8 एस सी आर 872	**संदर्भित**	**पैरा 56**
[2009]12 एस सी आर 54	**संदर्भित**	**पैरा 56**
[1972]3 एस सी आर 233	**खारिज**	**पैरा 59**
[1982]1 एस सी आर 842	**खारिज**	**पैरा 59**

सिविल अपीलीय अधिकारक्षेत्र: 2006 की सिविल अपील सं. 1093

मध्यस्थता में रांची में झारखंड उच्च न्यायालय के दिनांकित 06.08.2002 आदेश से 2002 की अपील सं. 6

अजीत कुमार सिन्हा, वरिष्ठ अधिवक्ता, गोपाल प्रसाद, देवाशीष भरुका, अमेयविक्रमा थानवी, रवि भरुका, जयेश गौरव, अधिवक्ता। अपीलार्थियों के लिए अधिवक्तागण

के. वी. विश्वनाथन, वरिष्ठ अधिवक्ता, जयंत के. मेहता, प्रतीक कुमार, अनुषक शारदा और सुश्री स्नेहा जानकीरमन (खेतान एंड कंपनी के लिए), उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया।

दीपक मिश्रा, भारत के मुख्य न्यायाधीश 1. दो-न्यायाधीशों की पीठ ने वर्तमान अपील की सुनवाई करते हुए पाया कि इस न्यायालय द्वारा मध्यस्थता न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय देने के लिए एक आवेदन की विचारणीयता के संबंध में मतभेद है, जब वह

मध्यस्थता कार्यवाही पर अपने अधिकार को न्यायालय के नियम के रूप में बरकरार रखता है और इसलिए, मामले को निम्नलिखित प्रश्न पर निर्णय के लिए बड़ी पीठ को भेज दिया गया हैः-

> "क्या यह न्यायालय किसी आवेदन पर पुरस्कार को न्यायालय का नियम बनाने के लिए विचार कर सकता है, भले ही यह मध्यस्था कार्यवाही पर अपना अधिकार बनाए रखे?

2. संदर्भ का उत्तर देने के लिए तथ्यों का विस्तार से वर्णन आवश्यक नहीं है।यह कहने के लिए पर्याप्त है कि चूंकि पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हुए थे, इसलिए मामले को विवादों के निर्णय के लिए एक मध्यस्थ के पास भेजा गया था और उक्त अवधि के दौरान, प्रतिवादी ने बॉम्बे के उच्च न्यायालय में एक मुकदमा दायर किया था जिसमें राज्य को बैंक गारंटी को भुनाने से रोकने के लिए एक अंतरिम निषेधाज्ञा की मांग की गई थी। चूंकि निर्णय देने का समय और विस्तार की अवधि समाप्त हो गई थी, इसलिए मध्यस्थता की कार्यवाही को छोड़ दिया गया था। राज्य ने ब्याज के साथ कुछ राशि की वसूली के लिए विद्वान उप-न्यायाधीश -I, सरायकेल्ला के समक्ष धन का मुकदमा दायर किया। प्रतिवादी ने वाद में उपस्थित होने के बाद मध्यस्थता अधिनियम, 1940 (संक्षेप में, "अधिनियम") की धारा 34 के तहत वाद पर रोक लगाने के लिए एक आवेदन दायर किया। उक्त प्रार्थना का विरोध किया गया और विद्वान उप-न्यायाधीश ने प्रतिवादी द्वारा दायर आवेदन को स्वीकार कर लिया। हालाँकि, दावे की मात्रा को ध्यान में रखते हुए, उप-न्यायाधीश ने यह विचार व्यक्त किया कि यह वांछनीय है कि पक्ष अपने विवादों का निपटारा एक मध्यस्थता कार्यवाही में करें। उक्त आदेश के खिलाफ, उच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 39 के तहत एक अपील दायर की गई थी जिसने दिनांक 06.08.2002 के आदेश के माध्यम से अपील को खारिज कर दिया था।

3. पीड़ित होने के कारण, झारखंड राज्य ने उस अपील को प्राथमिकता दी जिसका निपटारा इस न्यायालय द्वारा दिनांक 10.01.2013 के आदेश के माध्यम से किया गया था। यहाँ यह उल्लेख करने योग्य है कि पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील निम्नलिखित आदेश के लिए सहमत हुएः .

> "(i) पक्षकारों के बीच 25 अप्रैल, 1989 के अनुबंध के अनुसार 7 जनवरी, 1994 को प्रत्यर्थी द्वारा किया गया दावा, जिसे पहले मध्यस्थ न्यायाधिकरण को भेजा गया था, जिसने 15 फरवरी, 1995 को कार्यवाही शुरू की थी और जो अनिर्णायक रहा था, भेजा जाता है। माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. बी. सिन्हा, इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश को निर्णयार्थ संदर्भित किया गया। सिन्हा, इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश हैं।
>
> (ii) 1996 के धन वाद सं. 4 में प्रत्यर्थी के खिलाफ अपीलार्थी द्वारा किया गया दावा-झारखंड राज्य और अन्य बनाम मेसर्स हिंदुस्तान कंस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड ने उप-न्यायाधीश, सरायकेला, झारखंड की अदालत में 10 अप्रैल, 1996 को अपीलकर्ता द्वारा दायर याचिका जो माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. बी. सिन्हा, जो इस न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश हैं, को निर्णयार्थ संदर्भित किया गया।
>
> (iii) नियमों और शर्तों का निपटारा विद्वान मध्यस्थ द्वारा पक्षों के परामर्श से किया जाएगा।
>
> (iv) पक्षकार 5 फरवरी, 2013 को विद्वान मध्यस्थ के समक्ष उपस्थित होंगे। विद्वत मध्यस्थ को उपरोक्त मध्यस्थता कार्यवाही को शीघ्रता से समाप्त करने का अनुरोध करते हैं और आगे यह अवलोकन करने का कि पुरस्कार इस न्यायालय के समक्ष दायर किया जाएगा।

[रेखांकण हमारा है]

4. निपटान को पुनः प्रस्तुत करने के बाद, न्यायालय ने इस प्रकार दर्ज कियाः

"पक्षकारों के विद्वान वरिष्ठ वकील के बयान को दर्ज करते हैं एवं स्वीकार करते हैं कि विद्वान मध्यस्थ को गुण-दोष के आधार पर अवलोकन करते हैं।"

5. विद्वान मध्यस्थ ने मध्यस्थता कार्यवाही का समापन किया और 16.10.2015 को पुरस्कार पारित किया और इसे इस न्यायालय के समक्ष दायर किया। अपीलकर्ताओं ने दीवानी न्यायालय के समक्ष अपनी आपत्तियां दायर करके उक्त निर्णय को चुनौती दी। इसके विपरीत, प्रत्यर्थी ने दिनांकित 16.06.2016 को एक हलफनामा दायर किया जिसमें इस न्यायालय से पुरस्कार के संदर्भ में निर्णय देने का अनुरोध किया गया था।

6. दो-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि जब इस न्यायालय ने इस न्यायालय में पुरस्कार दाखिल करने का निर्देश दिया था, तो न्यायालय का पुरस्कार नियम बनाने के लिए एक आवेदन इस न्यायालय में दायर किया जाना है, क्योंकि केवल इसी न्यायालय के पास निर्णय देने का अधिकार क्षेत्र है। इस संबंध में **भारत कोकिंग कोल लिमिटेड बनाम अन्नपूर्णा कंस्ट्रक्शन 1 और पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य बनाम सम्बद्ध ठेकेदार 2** में निर्णय पर भरोसा किया गया था। उक्त प्रस्तुतियों का विरोध करते हुए, अपीलकर्ता-राज्य द्वारा यह आग्रह किया गया था कि यदि न्यायालय पुरस्कार पर आपत्तियों का फैसला करता है, तो पक्षकार अपील करने का अपना अधिकार खो देगा। यह भी तर्क दिया गया कि मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करके इस न्यायालय ने वास्तव में मध्यस्थ की कार्यवाही पर नियंत्रण नहीं रखा था। उक्त प्रस्तुतियों को सहारा देने के लिए, **राजस्थान राज्य बनाम नव भारत निर्माण कंपनी (2) 3** पर भारी निर्भरता रखी गई थी।

7. न्यायालय ने **नव भारत निर्माण कंपनी (उपरोक्त) में निर्णय का उल्लेख किया जिसने मैकडरमोट इंटरनेशनल आई. एन. सी. बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड और अन्य** में निर्णय और **भारत कोकिंग कोल लिमिटेड (उपरोक्त)** में प्रतिपादित सिद्धांतों से स्वयं को आगे अवगत कराया, जिसमें कहा गया है कि अपील करने का अधिकार एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कि कोई ठोस कारण मौजूद न हो, एक वादी को इससे वंचित नहीं किया जाना चाहिए। खंड पीठ ने **संबद्ध ठेकेदारों** (उपर्युक्त) में प्रतिपादित उस सिद्धांत का उल्लेख किया जिसमें तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने राय दी थी कि इस न्यायालय को मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षिप्तता के लिए, '1996 अधिनियम') की धारा 2 (i) (e) के अर्थ के भीतर एक न्यायालय नहीं माना जा सकता है। रेफरल निर्णय में उल्लेख किया गया है कि **मध्य प्रदेश राज्य बनाम सेठ एंड स्केल्टन (पी) लिमिटेड 5 और गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह एंड संस 6** जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब इस न्यायालय द्वारा एक मध्यस्थ की नियुक्ति की जाती है और आगे के निर्देश जारी किए जाते हैं, तो यह मध्यस्थता कार्यवाही पर अपना अधिकार बनाए रखता है और ऐसी परिस्थितियों में, सर्वोच्च न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (सी) के प्रयोजनों के लिए एकमात्र न्यायालय है।

8. दो-न्यायाधीशों की पीठ ने इस न्यायालय के समक्ष आवेदन के विचारण के संबंध में मतभेद को महसूस किया और मामले को उचित आदेशों के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखने का निर्देश दिया। इस तरह यह मामला हमारे सामने रखा गया है।

9. हमने अपीलार्थियों की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री अजीत कुमार सिन्हा और प्रतिवादी की ओर से वरिष्ठ वकील श्री के. वी. विश्वनाथन को सुना है।

10. यह अपीलार्थी-राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सिन्हा द्वारा समर्पित किया गया है कि गुरु नानक फाउंडेशन (ऊपर) में व्यक्त विचार कानून को सही ढंग से नहीं बताते है और अपीलार्थियों के अपील के अधिकार को केवल इस आधार पर निरस्त करना अनुचित होगा कि इस न्यायालय ने पक्षों की सहमति से स्वीकार किया था कि पुरस्कार इस न्यायालय के समक्ष दायर किया जाएगा और इसलिए, अकेले इस न्यायालय को ही न्यायालय का पुरस्कार नियम बनाने के लिए आपत्तियों पर निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र है। श्री सिन्हा के अनुसार, अधिनियम की धारा 2 (सी) के तहत न्यायालय की परिभाषा की उचित रूप से सराहना की जानी चाहिए और "न्यायालय" शब्द के अर्थ के उचित निर्माण पर, इसे सर्वोच्च न्यायालय को शामिल करने के लिए नहीं कहा जा सकता है - श्री सिन्हा ने यह भी प्रस्तावित किया है कि अधिनियम की योजना के तहत, अपीलार्थी कानून के तहत उप-न्यायाधीश के समक्ष आपत्तियां दायर करने के हकदार हैं, जिसका आदेश अधिनियम की धारा 39 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में आक्रमणीय और, यदि यह न्यायालय पक्षों द्वारा दायर आपत्तियों पर विचार करने के लिए मूल न्यायालय बन जाता है, तो विधायिका के किसी भी हस्तक्षेप के बिना अपील का अधिकार रद्द हो जाएगा। इस संदर्भ में **कर्नाटक राज्य बनाम भारत संघ और एक अन्य 7, ए. आर. अंतुले बनाम आर. एस. नायक और एक अन्य 8 और गरिकापति वीराया बनाम एन. सुब्बैया चौधरी और अन्य** मामले में निर्भरता रखी गई है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री सिन्हा ने आग्रह किया है कि **संबद्ध ठेकेदारों (उपरोक्त)** में स्थिति स्पष्ट कर दी गई है जिसमें न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया है कि **सैथ एवं स्केल्टन** (ऊपर) **एवं गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) में प्रतिपादित सिद्धांत संदेह के लिए खुले हैं और पूरी तरह से निर्णयों से निपटने पर, यह स्पष्ट होगा कि इसने इस सिद्धांत को निर्धारित किया है कि 'न्यायालय' शब्द में सर्वोच्च न्यायालय शामिल नहीं हो सकता है।

11. प्रत्यर्थी की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ वकील श्री विश्वनाथन ने अपनी ओर से तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 2 (सी) न्यायालय को परिभाषित करती है जब इसे एक उपयुक्त तरीके से पढा जाता है तो पता चलता है कि "न्यायालय" शब्द को संदर्भ के आधार पर एक अलग अर्थ दिया जा सकता है। उक्त उद्देश्य के लिए, **उन्होंने उपहार कर आयुक्त, मद्रास बनाम एन. एस. गेट्टी चेट्टियार 10, बिक्री कर आयुक्त, गुजरात राज्य बनाम यूनियन मेडिकल एजेंसी 11, सेठ एंड स्केल्टन (ऊपर) और व्हर्लपूल कॉर्पोरेशन बनाम ट्रेड मार्क्स के निबंधक, मुंबई और अन्य 12-** मामलों में हमारी सराहना की हैं। प्रत्यर्थी के विद्वान वरिष्ठ वकील ने आग्रह किया कि अधिनियम की धारा 14 (2) इंगित करती है कि एक ऐसा मामला हो सकता है जहां न्यायालय स्वयं न्यायालय में पुरस्कार दायर करने का निर्देश दे सकता है और एक बार जब वरिष्ठ न्यायालय ने नियंत्रण बनाए रखा है और न्यायालय के समक्ष धारा 14 (2) के संदर्भ में एक पुरस्कार दायर करने के लिए एक विशिष्ट निर्देश पारित कर दिया है, तो अन्य सभी न्यायालयों के पास विवाद के निर्धारण के लिए अधिकार क्षेत्र समाप्त हो जाता है। पदानुक्रमित संरचना पर जोर देते हुए, उनका तर्क है कि न्यायिक अनुशासन और सम्मान प्रबल होना चाहिए और इसलिए, वरिष्ठ न्यायालय के अलावा किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है।यह उनका निवेदन है कि जब यह न्यायालय मध्यस्थता कार्यवाही पर बनाए रखता है, अधिनियम से आने वाली किसी भी कार्यवाही को इस न्यायालय के समक्ष शुरू करना होगा। इस संबंध में, उन्होंने **सेठ एंड स्केल्टन** (ऊपर) और **गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) के कुछ लेखांश से प्रेरणा ली है। उनके अनुसार, अपीलार्थियों की ओर से अग्रसारित यह निवेदन कि वे अपील का अधिकार खो देंगे, गुरु नानक फाउंडेशन (ऊपर) में पूरी तरह से खारिज कर दिया गया है और उक्त सिद्धांत को हटाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

12. अधिनियम की धारा 31(4) की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए, श्री विश्वनाथन तर्क देंगे कि उक्त प्रावधान का उद्देश्य केवल उन स्थितियों से निपटना है जहां

धारा 31 की पहली तीन उप-धाराओं के अनुपालन के बाद भी, दो या दो से अधिक न्यायालय हो सकते हैं जिनमें उन उप-धाराओं के तहत कार्यवाही की जा सकती है। लेकिन उन मामलों में इसका कोई अनुप्रयोग नहीं है जहां एक वरिष्ठ/उच्चतर न्यायालय ने नियंत्रण बनाए रखा है और उस अदालत में पुरस्कार दायर करने का निर्देश पारित किया है। धारा 31 (4) में आदेशित चयन की अवधारणा को समान दर्जे के न्यायालयों के रूप में समझा जाना चाहिए। विद्वान वरिष्ठ वकील ने आगे समर्पित किया है कि वरिष्ठ न्यायालयों के नियंत्रण को प्राथमिकता दी जाए। उक्त प्रस्ताव को बनाए रखने के लिए, उसने कुंभा मावजी बनाम भारत अधिराज्य (अब भारत संघ) मामले पर निर्भरता रखी है। उन्होंने दबाव डाला है कि एक बार जब वरिष्ठ न्यायालय नियंत्रण बनाए रखता है जो अधिनियम के तहत अनुमेय है, तो आगे अपील करने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए, यह निवेदन कि अपील करने का अधिकार समाप्त हो गया है, योग्यता के बिना है। उपरोक्त प्रास्थगन को मजबूत करने के लिए, उन्होंने **पंजाब राज्य विद्युत बोर्ड और अन्य बनाम लुधियाना स्टील्स प्राइवेट लिमिटेड 14** में निर्णय से अपार समर्थन प्राप्त किया है। संबद्ध ठेकेदारों (ऊपर) पर टिप्पणी करते हुए, श्री विश्वनाथन ने तर्क दिया कि उक्त प्राधिकरण **सेठ एंड स्केल्टन** (ऊपर) और **गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) में मुख्य कारण की अनदेखी करता है और उक्त प्राधिकरण में प्रमुख कारण 1996 के अधिनियम की धारा 2 (1) (ई) के तहत "न्यायालय" की परिभाषा से संबंधित है और यह उसमें दिए गए निर्णय को अलग करता है। उनके द्वारा यह भी आग्रह किया गया है कि निर्णय जो **संबद्ध ठेकेदारों** (ऊपर) में संदर्भित किया गया है। तथ्यात्मक रूप से अलग हैं और जब तथ्यात्मक पृष्ठभूमि भिन्न होते है। न्यायालय को मामले के संदर्भ में अनुपात को देखना होगा। उन्होंने यह भी आग्रह किया है कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील द्वारा जिन अधिकारियों पर भरोसा किया गया है, वे वर्तमान विवाद से संबंधित नहीं हैं क्योंकि उक्त मामलों में अदालत ने अपने साथ कार्यवाही पर नियंत्रण नहीं रखा था।

13. विवाद को समझने के लिए, अधिनियम की योजना की सराहना करना निर्णायक है। खंड 2 शब्दकोश खंड है। यह इन शब्दों से शुरू होता है "जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी अप्रिय न हो।"हमारे सामने तर्क यह है कि इस तरह के शब्दों का उपयोग स्पष्ट रूप से दिखाता है कि "न्यायालय" शब्द को संदर्भ के आधार पर एक अलग अर्थ दिया जा सकता है। यूनियन मेडिकल एजेंसी (ऊपर) में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ, वैधानिक व्याख्या की अवधारणा से निपटने के दौरान जब विषय वस्तु या संदर्भ अलग होता है, तो उसने कहा हैः-

> “14. यह एक सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि जब किसी शब्द या वाक्यांश को व्याख्या खंड में परिभाषित किया गया है, तो प्रथम दृष्टया वह परिभाषा तब नियंत्रित होती है जब भी उस शब्द या वाक्यांश का उपयोग क़ानून के मुख्य भाग में किया जाता है। लेकिन जहां संदर्भ परिभाषा खंड को अप्रयोज्य बनाता है, कानून के मुख्य भाग में उपयोग किए जाने पर एक परिभाषित शब्द को व्याख्या खंड में निहित अर्थ से अलग अर्थ देना पड़ सकता हैः इसलिए, एक व्याख्या खंड में दी गई सभी परिभाषाएं सामान्य रूप से अधिनियमित सामान्य योग्यता के विषय- "जब तक कि विषय या संदर्भ में कुछ भी अप्रिय न हो", या "जब तक कि संदर्भ द्वारा अन्यथा आवश्यक न हो"। उस प्रभाव के लिए एक स्पष्ट योग्यता के अभाव में भी ऐसी योग्यता हमेशा निहित होती है।

14. सेठ और स्केल्टन (ऊपर) के मामले में, न्यायालय अधिनियम की धारा 2 (सी) और धारा 14 (2) पर विचार कर रहे थे और उस संदर्भ में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने धारा 2 की शुरुआत में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए राय दीः .

> “18. ... इसलिए अभिव्यक्ति "न्यायालय" को अधिनियम की धारा 2 (सी) में परिभाषित के रूप में केवल तभी समझा जाना चाहिए जब विषय या संदर्भ में कुछ

भी अप्रिय न हो। यह उस आलोक मे है कि अधिनियम की धारा 14 (2) में होने वाली घटना को समझना और व्याख्या करनी होगी।"

15. उपरोक्त मामले में, न्यायालय ने पक्षों की सहमति पर मध्यस्थ की नियुक्ति की थी और उसे "अपना पुरस्कार देने के लिए" निर्देश दिया था। इसके अलावा, उक्त मामले में आगे कोई निर्देश नही दिया गया। मध्यस्थ ने पुरस्कार पारित करने के बाद इसे इस न्यायालय के समक्ष दायर किया था और उस संदर्भ में, न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

"18. ... निश्चित रूप से कानून पुरस्कार दिए जाने के पश्चात आगे उठाए जाने वाले कारणों पर विचार करता है, और स्वाभाविक रूप से आगे की कार्रवाई करने का मंच केवल यही न्यायालय है। इस आशय का भी निर्देश था कि पक्षकार पुरस्कार देने के लिए समय बढ़ाने के लिए आवेदन करने के लिए स्वतंत्र हैं। आदेश द्वारा किसी अन्य न्यायालय को ऐसी अधिकारिता के साथ निवेश किए जाने की अनुपस्थिति में, एकमात्र निष्कर्ष जो संभव है वह यह है कि ऐसा अनुरोध केवल उस न्यायालय को किया जाना चाहिए जिसने उस आदेश को पारित किया था अर्थात, यह न्यायालय।"

और फिर सेः

"19. कि इस न्यायालय ने मध्यस्थता कार्यवाहियों पर 1 फरवरी, 1971 और 30 अप्रैल, 1971 पूर्ण नियंत्रण बनाए रखा, इसके आदेशों द्वारा स्पष्ट किया गया है।पूर्व तिथि पर, दोनों पक्षों के वकीलों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने निर्देश दिया कि आगे मध्यस्थता कार्यवाही का रिकॉर्ड बुलाया जाए और एकमात्र मध्यस्थ श्री वी. एस. देसाई को दिया जाए। बाद की तारीख को, फिर से, वकील को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पुरस्कार देने का समय चार महीने के लिए बढ़ा दिया और मध्यस्थ को बॉम्बे में मध्यस्थता कार्यवाही आयोजित करने की अनुमति दी।29 जनवरी, 1971 को पारित आदेश की प्रकृति और उसके बाद की कार्यवाही, जिसका ऊपर उल्लेख किया

गया है, स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि इस न्यायालय ने मध्यस्थता कार्यवाही पर पूर्णरुपेण नियंत्रण कायम रखा।"

16. इसके बाद, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने **सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार और अन्य बनाम सी. टी. ए. सी. टी. सुब्रमण्यम चेट्टियार 15** में निर्णय को संदर्भित किया एवं उसी पर भरोसा करते हुए, यह विचार व्यक्त किया कि यह न्यायालय अधिनियम की धारा 14 (2) के तहत "न्यायालय" है जहाँ मध्यस्थता पुरस्कार वैध रूप से दायर किया जा सकता है।

17. **गुरु नानक फाउंडेशन** (उपरोक्त) मामले में, जब से पक्षों के बीच मतभेद उत्पन्न हुए, अधिनियम की धारा 20 के तहत उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें सेवानिवृत्त मुख्य अभियंता को जिन्हे संदर्भित किया गया था, को एकमात्र मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया। जब संदर्भ लंबित था, मध्यस्थ को हटाने के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था और उच्च न्यायालय ने आवेदन को अस्वीकार करना उचित समझा। गुरु नानक फाउंडेशन ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की दृढ़ता पर हमला किया और इस न्यायालय ने मध्यस्थ को हटा दिया और एक अन्य मध्यस्थ नियुक्त किया और मध्यस्थ को 15 दिनों के भीतर कार्यवाही शुरू करने और इसे जल्द से जल्द निपटाने का निर्देश दिया।नव नियुक्त मध्यस्थ द्वारा कार्यवाही शुरू करने के बाद, इसने पक्षों को यह कहते हुए अपनी दलीलें दायर करने का निर्देश दिया कि वह नए सिरे से मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करना चाहते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि पूर्व मध्यस्थ के समक्ष दायर दलीलें और उसके सामने पेश किए गए साक्ष्य को नजरअंदाज किया जाना था। इसने पहले प्रतिवादी को इस न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर करने के लिए प्रेरित किया जिसमें इस राहत की मांग की गई थी कि विद्वान मध्यस्थ को उस चरण से मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करनी चाहिए जहां इसे पिछले

मध्यस्थ द्वारा छोड़ा गया था।दोनों पक्षों को सुनने के बाद, अदालत ने इस प्रकार निर्देश दियाः

> "1977 का सीएमपी सं. 1088:हम दोनो तरफ के वकीलों को सुन चुके हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि नए मध्यस्थ को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की भावना के अनुरूप मध्यस्थता कार्यवाही को समाप्त करने के लिए तेजी से आगे बढ़ना चाहिए। इस न्यायालय के पहले के निर्देशों में यह कहा गया था कि कार्यवाही 15 दिनों के भीतर शुरू होनी चाहिए और मध्यस्थ 'यथासंभव शीघ्रता से इसका निपटारा करने का प्रयास करेगा। हम निर्देश देते हैं कि मध्यस्थ, दोनों पक्षों के वकील की सहमति को ध्यान में रखते हुए, कि वह आज से चार महीने के भीतर कार्यवाही समाप्त कर देगा।
>
> एक शिकायत की जाती है कि मध्यस्थ नए अभिवचनों की मांग कर रहा है जो शायद आलस्यपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि दोनों पक्षों द्वारा पूर्व मध्यस्थ श्री नंदा के समक्ष अभिवचन पहले ही दायर किए जा चुके हैं। यदि कोई पूरक बयान दाखिल किया जाना है तो यह निश्चित रूप से पक्षों के लिए खुला है कि वे आज से एक सप्ताह के भीतर मध्यस्थ को उन्हें प्राप्त करने के लिए राजी करें। मध्यस्थ को याद होगा कि पहले से ही कुछ साक्ष्य एकत्र किए जा चुके हैं और उसे केवल विचार करना और निष्कर्ष निकालना है। इस निर्देश के साथ हम आवेदन का निपटान करते हैं।

18. पुरस्कार पारित होने के बाद, मध्यस्थ ने पुरस्कार दाखिल करने के लिए इस न्यायालय की रजिस्ट्री से संपर्क किया और उन्हें इस न्यायालय के एक अधिकारी ने सलाह दी कि पुरस्कार दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया जाना चाहिए।मध्यस्थ ने दिल्ली उच्च न्यायालय में निर्णय दायर किया। उस समय, प्रतिवादी ने याचिका दायर कर यह घोषणा करने का अनुरोध किया कि अधिनियम की धारा 14 (2) के साथ पठित धारा

31 (4) में निहित प्रावधानों को देखते हुए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष पुरस्कार दायर करने की आवश्यकता है। उच्च न्यायालय के समक्ष यह तर्क दिया गया था कि चूंकि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मध्यस्थ को निर्देश दिया गया था और आगे निर्देश दिए गए थे, इसलिए यह न्यायालय मामले के नियंत्रण में था और अधिनियम की धारा 31 (4) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए केवल उसे ही निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र था। इस मामले को इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई और उच्च न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगा दी गई।

19. दो-न्यायाधीशों की पीठ ने तथ्यों का वर्णन करने के बाद निम्नलिखित प्रश्न पूछाः

> “अतः इस मामले में संकीर्ण प्रश्न यह हैःयहाँ वर्णित परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जो वह न्यायालय है जिसके पास विचारार्थ पुरस्कार का अधिकार क्षेत्र हैः दूसरे शब्दों में, वह न्यायालय है जिसके पास वह अधिकार-क्षेत्र है, जिसमें पुरस्कार मध्यस्थ द्वारा दायर किया जाना चाहिए।

20. धारा 2 (सी) के तहत उत्कीर्ण "न्यायालय" अभिव्यक्ति के अर्थ का विश्लेषण करते हुए और धारा 2 की शुरुआत में आने वाले शब्दों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने इस प्रकार कहाः

> “13. धारा 2 (सी) में अभिव्यक्ति "अदालत" के शब्दकोश अर्थ को वहाँ लागू करना होगा जहाँ भी वह शब्द अधिनियम में आता है, लेकिन इस सीमा के साथ कि यदि विषय या संदर्भ में कुछ भी अप्रिय है, तो शब्दकोश का अर्थ अभिव्यक्ति “अदालत” लागू नहीं किया जा सकता है। मान लीजिए कि विषय या संदर्भ में कुछ भी अप्रिय नहीं है, तो अधिनियम में "न्यायालय" अभिव्यक्ति का अर्थ वह दीवानी न्यायालय होगा जिसके पास संदर्भ का विषय बनाने वाले प्रश्न का निर्णय करने का अधिकार

क्षेत्र होता है, यदि वह किसी वाद का विषय होता, लेकिन इसमें एक लघु कारण न्यायालय शामिल नहीं है, हालांकि यह धारा 21 के तहत मध्यस्थता कार्यवाही को छोड़कर एक दीवानी न्यायालय है। धारा 14, उप-धारा (2) न्यायालय में पुरस्कार दाखिल करने का प्रावधान करती है और अभिव्यक्ति "अदालत" की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए मध्यस्थ को उस न्यायालय में पुरस्कार दाखिल करना होगा जिसे संदर्भित विषय-वस्तु द्वारा रचित वाद पर विचारार्थ अधिकार-क्षेत्र होगा।

21. जैसा कि निर्णय में चर्चा से पता चलता है, न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालयों के बीच कुछ विवाद था कि क्या "न्यायालय" शब्द अपीलीय न्यायालय को समझेंगा जिसमें निर्णय दायर किया जा सकता है लेकिन अंत में इसका समाधान **सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार** (ऊपर) में निर्णय में किया गया था जिसमें कहा गया था कि अधिनियम की धारा 21 में "वाद" और "न्यायालय" शब्द भी क्रमशः "अपील" और "अपीलीय न्यायालय" में कार्यवाही को भी समझेंगे क्योंकि धारा 21 में "न्यायालय" शब्द उन अपीलीय न्यायालय कार्यवाही को शामिल करता है जो आम तौर पर वाद की निरंतरता द्वारा पहचाना जाता है एवं "वाद" शब्द ऐसी अपीलीय कार्यवाहियों को शामिल करेगा।

22. ऐसा कहने के बाद, **गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) अधिनियम की धारा 31 (4) का उल्लेख करने के लिए आगे बढ़े और उस संदर्भ में यह अभिनिर्धारित किया कि गैर-अस्थाई खंड पूरे अधिनियम में या तत्काल लागू किसी अन्य कानून में कहीं भी निहित किसी भी चीज़ को बाहर करता है यदि यह उप-धारा (4) में निहित सात्वान् प्रावधान के विपरीत या असंगत है। इसने आगे फैसला सुनाया कि उस हद तक यह न्यायालय की अधिकारिता के सामान्य प्रश्न के लिए एक अपवाद बनाता है जिसमें उप-धारा (4) में निर्दिष्ट कार्यवाहियों के संबंध में अधिनियम में प्रदान किए गए अन्य स्थान पर पुरस्कार दायर किया जा सकता है। उप-धारा (4) में निहित प्रावधान अधिनिर्णय दाखिल करने के संबंध में रद्द

करने का प्रभाव होगा यदि उसमें निर्धारित शर्तें पूरी हो जाती हैं। यदि वे शर्तें पूरी हो जाती हैं, तो धारा 14 (2) या धारा 31 (1) में परिकल्पित अदालत के अलावा वह अन्य अदालत होगी जिसमें पुरस्कार दायर करना होगा।धारा 31 की उप-धारा (4) में गैर-अस्थाई खंड के प्रभाव का विस्तार करते हुए, यह राय दी गई है कि उप-धारा (4) उस न्यायालय में अनन्य अधिकारिता का निवेश करती है, जिसके लिए किसी भी संदर्भ में एक आवेदन किया गया है और वह न्यायालय मध्यस्थता कार्यवाही पर अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय के रूप में विचार करने के लिए सक्षम है और संदर्भ से उत्पन्न होने वाले सभी बाद के आवेदन और मध्यस्थता कार्यवाही उस न्यायालय में की जानी चाहिए और किसी अन्य न्यायालय में नहीं। इसलिए, उप-धारा (4) न केवल उस न्यायालय को अनन्य अधिकारिता प्रदान करती है, जिसके लिए किसी भी संदर्भ में आवेदन किया जाता है, बल्कि साथ ही किसी अन्य न्यायालय की अधिकारिता को भी हटा देती है, जिसकी इस संबंध में अधिकारिता भी हो सकती है। न्यायालय ने आगे स्पष्ट करते हुए कहा कि यदि एक पुरस्कार किसी विशेष न्यायालय जिसमें पुरस्कार के विषय-वस्तु को छुते हुए मुकदमा धारा 14 (2) के साथ पठित धारा 31 (1) के तहत दायर करने की आवश्यकता होती, लेकिन यदि अधिनियम के तहत संदर्भ में कोई आवेदन किसी अन्य न्यायालय में दायर किया गया है जो उस आवेदन पर विचार करने के लिए सक्षम था, तो पहले उल्लिखित न्यायालय के अपवर्जन के लिए, धारा 31 (4) में निहित प्रावधान को रद्द करने के प्रभाव को देखते हुए, केवल बाद वाले न्यायालय को ही अधिनिर्णय पर विचार करने का अधिकार होगा और अधिनिर्णय को केवल उस न्यायालय में दायर करना होगा और किसी अन्य न्यायालय को उस पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

23. ऐसा कहने के बाद, न्यायालय ने कहा कि धारा 14 की उप-धारा (2) में निहित प्रावधान को न तो अनुचित माना जाएगा और न ही उस निर्माण के साथ वैमनस्यता होगी जो उसके द्वारा धारा 31 की उप धारा (4) पर रखा गया है क्योंकि अभिव्यक्ति

"न्यायालय" जैसा कि धारा 2 (सी) में परिभाषित किया गया है, इसका पालन तब तक किया जाना है जब तक कि जिस विषय या संदर्भ में कुछ भी अप्रिय न हो जिसमें इसका उपयोग किया जाता है। आगे यह राय दी जाती है कि शुद्ध व्याकरणिक संरचना के साथ-साथ अधिनियम में निहित विभिन्न प्रावधानों के सामंजस्यपूर्ण और समग्र दृष्टिकोण पर यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आम तौर पर न्यायालय को अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाले प्रश्नों से निपटने का अधिकार क्षेत्र होगा, सिवाय अध्याय IV के एक के जिसमें मध्यस्थता में शामिल विवाद के संबंध में मुकदमा दीवानी प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत दायर किया जाना आवश्यक होगा। आगे स्पष्ट करते हुए, दो-न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनाया कि जब कोई आवेदन उस पर विचार करने के लिए सक्षम अदालत के किसी भी संदर्भ में किया जाता है, तो उस अदालत के पास मध्यस्थता कार्यवाही और संदर्भ से उत्पन्न होने वाले सभी बाद के आवेदनों पर अधिकार क्षेत्र होगा और मध्यस्थता कार्यवाही केवल उस अदालत में की जाएगी और किसी अन्य अदालत में नहीं।तथ्यों का विश्लेषण करते हुए, विद्वान न्यायाधीशों ने व्यक्त किया कि इस न्यायालय का मध्यस्थ के समक्ष कार्यवाही पर पूर्ण नियंत्रण था। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस न्यायालय द्वारा निर्देश दिया गया था और मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन के तरीके और विधि के संबंध में और उसे पूरा करने के लिए समय निर्धारित करने के संबंध में आगे के निर्देश जारी किए गए थे, केवल इस न्यायालय के पास निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र था। दो-न्यायाधीशों की पीठ **सेठ और स्केल्टन** (ऊपर) पर निर्भरता रखी एवं व्यक्त किया कि सिद्धांत और अधिकार दोनों पर, केवल इस न्यायालय के पास पुरस्कार दाखिल करने का अधिकार क्षेत्र था।

24. यहां यह बताना आवश्यक है कि अपीलार्थी की ओर से, इस स्थिति को मजबूत करने के लिए **कुंभा मावजी** (उपरोक्त) पर भरोसा रखा गया था कि धारा 31 (4) संदर्भ दिए जाने के बाद या संदर्भ के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि संदर्भ दिए जाने के लिए पहले किए गए आवेदन को अपने विस्तार में ले

सकती है और यदि ऐसा आवेदन किसी अदालत में किया गया है, तो उस अदालत को इस तरह के आवेदन पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र होगा। **कुंभा मावजी** के मामले की व्याख्या करते हुए, दो-न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि उक्त मामले में इस न्यायालय के समक्ष एक तर्क उठाया गया था कि धारा 31(4) केवल मध्यस्थता के लिए एक संदर्भ के लंबित होने के दौरान आवेदनों तक ही सीमित है और इस न्यायालय ने धारा 31 की योजना का विश्लेषण करने के बाद कहा कि ऐसा कोई कल्पनीय कारण नहीं है कि विधायिका को उप-धारा (4) के संचालन को केवल मध्यस्थता के लंबित होने के दौरान किए गए आवेदनों तक ही सीमित रखना चाहिए था, यदि जैसा कि प्रतिवाद किया जाता है, वाक्यांश "किसी भी संदर्भ में" को "संदर्भ के दौरान" अर्थ के रूप में लिया जाना है। अंततः इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि धारा 31 की उप-धारा (4) में प्रयुक्त वाक्यांश "किसी भी संदर्भ में" का अर्थ है "किसी भी संदर्भ के दौरान", और निष्कर्ष निकाला कि धारा 31, उप-धारा (4) उस न्यायालय में अनन्य अधिकारिता निहित करेगी जिसमें अधिनियम की धारा 14 के तहत पहले पुरस्कार दाखिल करने के लिए आवेदन किया गया है। ऐसा कहने के बाद, विद्वान न्यायाधीशों ने आगे कहाः

> "22. … हम यह देखने में विफल हैं कि यह निर्णय अपीलार्थी की ओर से प्रचार किए गए विवाद का जवाब देने में कैसे मदद करेगा। वास्तव में कुंभा मावजी मामले में निर्णय को आगे इस न्यायालय द्वारा भारत संघ बनाम सुरजीत सिंह अटवाल 16 मामले में समझाया गया। बाद के मामले में विवाद यह था कि क्या मुकदमे पर रोक लगाने के लिए अधिनियम की धारा 34 के तहत एक आवेदन अधिनियम की धारा 31(4) के अर्थ के भीतर एक संदर्भ में किया गया एक आवेदन था और इसलिए, बाद का आवेदन केवल उस अदालत में किया जा सकता है जिसमें मुकदमे पर रोक लगाने का अनुरोध किया गया था। इस विवाद के समर्थन में कुंभा मावजी मामले पर निर्भरता यह आग्रह करते हुए रखी गई थी। अधिनियम की धारा 31 (4) के तहत

अभिव्यक्ति “किसी संदर्भ में” मध्यस्थता पूरी होने और अंतिम निर्णय दिए जाने के बाद पहले किए गए आवेदन को शामिल करने के लिए पर्याप्त व्यापक है और उप-धारा मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक ही सीमित नहीं है। इस तर्क को नकारते हुए इस न्यायालय ने कहा कि "किसी संदर्भ में" वाक्यांश के दिए गए व्यापक अर्थ को स्वीकार करते हुए धारा 34 के तहत "एक संदर्भ के दौरान" में अंतर्निहित एक आवेदन कुंभा मावजी वाद में सविस्तार प्रतिपादित वाक्यांश के अर्थ के भीतर संदर्भित एक आवेदन नहीं है। न्यायालय ने विभिन्न धाराओं पर ध्यान दिया जिनके तहत एक संदर्भ दिए जाने से पहले एक आवेदन किया जा सकता है।इसलिए, कुंभा मावजी मामले में निर्णय का मतलब यह नहीं होगा कि अदालत में संदर्भ के लिए पहले की कार्यवाही उस अदालत को ऐसी अधिकारिता प्रदान करेगी जो धारा 31 (4) में निहित प्रावधान को आलस्यपूर्ण रूप से प्रदान करती है।

उपरोक्त विश्लेषण से केवल यह पता चलता है कि दो-न्यायाधीशों की पीठ ने यह राय व्यक्त की कि कुंभा मावजी में बताए गए सिद्धांत अपीलार्थी की ओर से प्रचार किए गए विवाद का जवाब देने में मदद नहीं करेंगे और आगे कहा कि उक्त प्राधिकारी का मतलब यह नहीं होगा कि अदालत में संदर्भ के लिए पहले की कार्यवाही उस अदालत को ऐसी अधिकारिता प्रदान करेगी जो धारा 31 (4) में निहित प्रावधान को आलस्यमय रूप से प्रस्तुत करती है।

25. आगे एक और तर्क यह भी दिया गया कि यदि यह न्यायालय धारा 31 की उप-धारा (4) का इस तरह से निर्माण करके अपने अधिकार क्षेत्र का झूठा दावा करना है, तो यह दुखी पक्ष को संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपील करने और अदालत का दरवाजा खटखटाने के अपने मूल्यवान अधिकार से वंचित कर देगा। उक्त निवेदन को पलटते हुए,

अदालत ने **सेठ एंड स्केल्टन (पी) लिमिटेड** मामले को संदर्भित किया और राय दी कि एक समान स्थिति में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पुरस्कार अकेले इस न्यायालय में दायर किया जाना चाहिए जो निश्चित रूप से अपील करने के अवसर को नकार देगा क्योंकि यह अंतिम न्यायालय है। दो-न्यायाधीशों की पीठ ने आगे यह मत व्यक्त किया कि इस न्यायालय द्वारा **गरिकापति वीराया (उपरोक्त)** में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अपील का अधिकार एक निहित अधिकार है और उच्चतर न्यायालय में प्रवेश करने का ऐसा अधिकार वादी को प्राप्त होता है और यह अधिकार उस दिन और उस तारीख से मौजूद है जिस दिन से याचिका शुरू होती है, उसे अस्वीकार या पराजित नहीं किया जाता है क्योंकि जिस सर्वोच्च न्यायालय में कोई व्यक्ति अपील के माध्यम से आ सकता है, वह उन सभी दलीलों को स्वीकार करेगा जिन्हें अपीलार्थी की ओर से प्रचार करना पड़ सकता है। इसके बाद यह कहा गया हैः

> "23. ..... अपीलार्थी के लिए इस न्यायालय का द्वार बंद नहीं किया जा रहा है। वास्तव में उसके लिए दरवाजे को पूरी तरह से खुला रखा जा रहा है ताकि वह उन सभी विवादों को उठा सके जिन्हें एक प्रारंभिक समन में कार्यवाही में उठाया जा सकता है। इसलिए, हम इस तर्क में योग्यता नहीं देखते हैं और इसे अस्वीकार किया जाना चाहिए।"

26. हमने उपरोक्त अंश को इस बात पर प्रकाश डालने के लिए निकाला है कि **गुरु नानक फाउंडेशन** (उपरोक्त) के मामले में **कुंभ मावजी** में निर्धारित सिद्धांत को कैसे अलग किया गया है। तर्क को समझने के लिए, **कुंभ मावजी** (ऊपर) में बताए गए तथ्यों और सिद्धांतों का विश्लेषण करना आवश्यक है। उक्त मामले में, न्यायालय ने कहा कि जिन तीन प्रश्नों पर विचार किया जाना था वे थेः

"(1) क्या अपीलार्थी को मध्यस्थता अधिनियम की धारा 14 (2) के संदर्भ में अदालत में अपनी ओर से पुरस्कार दाखिल करने हेतु मध्यस्थ (अंपायर) का अधिकार था;

(2) क्या अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (3) को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि पुरस्कार गुवाहाटी न्यायालय की तुलना में कलकत्ता उच्च न्यायालय में पहले दायर किए गए थे; और

(3) क्या अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (4) का दायरा केवल मध्यस्थता कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अधिनियम के तहत आवेदनों तक सीमित है।.

27. जहाँ तक पहले प्रश्न का संबंध है, हमें उस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।ध्यान देने योग्य बात यह है कि न्यायालय ने तीसरे प्रश्न से कैसे निपटा और उक्त उद्देश्य के लिए, उक्त मामले में शामिल तथ्यों के बारे में खुद को अवगत कराना आवश्यक है। उक्त मामले में प्रतिवादी ने असम में गुवाहाटी के अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 14 (2) के तहत एक आवेदन दायर किया था कि अंपायर को अदालत में दोनों पुरस्कार दाखिल करने का निर्देश दिया जाए। उत्तरदाता द्वारा न्यायालय गुवाहाटी में पहला आवेदन करने के एक सप्ताह बाद उसमें अपीलार्थी के प्रतिवक्ताओं ने दो पुरस्कारों के साथ कलकत्ता उच्च न्यायालय के निबंधक को एक पत्र भेजा और उस पर नोटिस जारी करने का अनुरोध किया। उप-निबंधक और वकीलों के बीच कुछ पत्राचार के बाद, पक्षों को पुरस्कार देने और न्यायालय के वाणिज्यिक न्यायाधीश द्वारा उक्त पुरस्कारों के निर्धारण के लिए एक तारीख तय करने का निर्देश जारी किया गया था। तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि एक ही पुरस्कारों के संबंध में, असम में गुवाहाटी के अधीनस्थ न्यायालय के साथ-साथ कलकत्ता उच्च न्यायालय के मूल पक्ष में एक साथ दायर अधिनियम की धारा 14 (2) के तहत कार्यवाही शुरू करने का दावा करते हुए की गई थी। कलकत्ता न्यायालय के

अधिकार क्षेत्र और पुरस्कारों की वैधता पर आपत्ति जताते हुए प्रतिवादी द्वारा विवाद उठाया गया था। उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी द्वारा उठाई गई आपत्ति को खारिज कर दिया और पुरस्कारों पर निर्णय पारित किया। खंड पीठ में अपील करने पर, विद्वान न्यायाधीशों ने विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले से असहमति जताते हुए कहा कि कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष अधिनियम की धारा 14 (2) के तहत कोई उचित आवेदन नहीं किया गया था और, नतीजतन, इस मामले से निपटने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।

28. अपीलों पर विचार करते समय, इस न्यायालय ने राय दी कि अधिनियम की धारा 31 (1) के तहत उस मामले में अधिकार क्षेत्र वाले किसी भी न्यायालय में एक पुरस्कार दायर किया जा सकता है जिससे संदर्भ संबंधित है और उक्त मामले में, संदर्भ एक अनुबंध से उत्पन्न हुआ था जो कलकत्ता में किया गया था और जिसे असम में किया जाना था और इसलिए, गुवाहाटी न्यायालय के साथ-साथ कलकत्ता न्यायालय को भी संदर्भ के विषय पर अधिकार क्षेत्र था। इसने भारत संघ द्वारा उठाए गए इस निवेदन पर ध्यान दिया कि कलकत्ता उच्च न्यायालय को दिए गए आवेदन से पहले गुवाहाटी न्यायालय में एक आवेदन किया गया था और इसलिए, कलकत्ता उच्च न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था।विद्वान एकल न्यायाधीश की राय थी कि धारा 31 (4) केवल मध्यस्थता के संदर्भ के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों से संबंधित है न कि निर्णय देने के बाद किए गए आवेदनों से। विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार, पुरस्कार दाखिल करने के लिए आवेदनों का ध्यान किए बिना, अनन्य अधिकार क्षेत्र का निर्धारण इस प्रश्न के संदर्भ में कि वह सक्षम न्यायालय कौन सा था जिसमें वास्तव में, धारा 14 की उप-धारा (2) के तहत पहली बार पुरस्कार दायर किया गया था (जब पुरस्कार दाखिल करने के लिए आवेदन पहली बार प्रस्तुत किया गया था, से अलग)। इस पृष्ठभूमि में, अधिनियम की धारा 31 (3) की व्याख्या करते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि केवल गुवाहाटी न्यायालय का ही

अधिकार क्षेत्र था। अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (4) से संबंधित तीसरे प्रश्न के संबंध में, न्यायालय ने प्रावधानों को पुनः प्रस्तुत करने के बाद राय दीः .

"11. उप-धारा (1) इस प्रश्न से संबंधित है कि एक पूर्ण पुरस्कार कहाँ दाखिल किया जाना है, और उस उद्देश्य के लिए स्थानीय क्षेत्राधिकार निर्धारित करती है। उप-धारा (2) उस अधिकारिता के प्रयोग की सीमा से संबंधित है, और यह कहकर इसे अनन्य घोषित करता है कि "सभी समझौते के पक्षों या उनके तहत दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच एक पुरस्कार या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के बारे में प्रश्न उस अदालत द्वारा तय किए जाएंगे जिसमें समझौते के तहत पुरस्कार दायर किया गया है, या दायर किया जा सकता है और किसी अन्य अदालत द्वारा नहीं। उप-धारा (3) का उद्देश्य यह उपबंध करना है कि मध्यस्थता कार्यवाहियों के संचालन के संबंध में या अन्यथा ऐसी कार्यवाहियों से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदन केवल एक न्यायालय में किए जाने हैं, और संबंधित पक्ष को ऐसा करने का दायित्व देता है। फिर आती है उप-धारा (4), जिसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से उप-धारा (3) से आगे जाना है, अर्थात न केवल संबंधित पक्ष को एक अदालत में सभी आवेदन दायर करने का दायित्व देना, बल्कि न्यायालय में ऐसे आवेदनों के लिए अनन्य अधिकार क्षेत्र निहित करना जिसमें पहला आवेदन पहले ही किया जा चुका है।

12. इस प्रकार यह धारा 31 के एक व्यापक दृष्टिकोण पर देखा जाएगा कि जहां पहली उप-धारा उस न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारण करती है जिसमें एक पुरस्कार दायर किया जा सकता है, उप-धारा (2), (3) और (4) का उद्देश्य उस अधिकारिता को तीन अलग-अलग तरीकों से प्रभावी बनाना है, (1) एक न्यायालय में एक पुरस्कार या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के संबंध में सभी प्रश्नों से निपटने का अधिकार निहित करके, (2) एक न्यायालय में मध्यस्थता

कार्यवाही के संचालन या अन्यथा ऐसी कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदनों को दायर करने के लिए संबंधित व्यक्तियों को बाध्य करके, और (3) उस न्यायालय में अनन्य अधिकार क्षेत्र निहित करके जिसमें मामले से संबंधित पहला आवेदन दायर किया गया है। इसलिए, उप-धारा (4) का संदर्भ यह इंगित करता प्रतीत होता है कि उप-धारा का उद्देश्य मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक ही सीमित नहीं था। प्रभावी और अनन्य अधिकारिता वाले एकल न्यायालय की आवश्यकता, और इन तीन प्रावधानों के संयुक्त संचालन द्वारा संघर्ष और हाथापाई से बचने के लिए समान रूप से आवश्यक है कि क्या प्रश्न मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान या मध्यस्थता पूरा होने के बाद या मध्यस्थता शुरू होने से पहले उत्पन्न होता है। ऐसा कोई कल्पनीय कारण नहीं है कि विधायिका को उप-धारा (4) के संचालन को केवल मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक ही सीमित रखने का इरादा होना चाहिए था, यदि जैसा कि तर्क दिया कि "किसी भी संदर्भ में" वाक्यांश को "संदर्भ के दौरान" के अर्थ के रूप में लिया जाना चाहिए।

[रेखांकित करना हमारा है]

29. अधिनियम की योजना और मध्यस्थता की विभिन्न श्रेणियों का आगे विश्लेषण करते हुए, न्यायालय ने कहाः .

"13. ... वास्तव में, इन उप-धाराओं में प्रयुक्त व्यापक भाषा को ध्यान में रखते हुए यह माना गया है कि उप-धारा (2) और (3) तीनों वर्गों को उनके सभी चरणों में शामिल करती हैं। यदि हां, तो क्या यह सोचने का कोई पर्याप्त कारण है कि उप-धारा (4) का संचालन बहुत सीमित था? अपीलार्थी के लिए सुझाए गए इस उप-धारा के विचार पर, न केवल अधिनिर्णय घोषित होने के बाद किए गए आवेदन को उप-धारा (4) से बाहर रखा जाएगा, बल्कि मध्यस्थता के प्रारंभ से पहले किए गए आवेदन को

भी, अर्थात संदर्भ समझौते को दाखिल करने और उस पर निर्देश देने के लिए, बाहर रखा जाएगा। यह याद रखना चाहिए कि धारा 31 धाराओं के समूह में से एक है जो धारा 26 के गुण-दोष के आधार पर “सामान्य” शीर्ष पर सभी मध्यस्थताओं पर लागू होते हैं। इसलिए जब तक धारा 31 की उप-धारा (4) में दिए गए शब्द इतने बाध्यकारी नहीं हैं कि मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान आवेदनों तक ही उनका दायरा सीमित हो, तब तक इस तरह के सीमित निर्माण को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

30. आगे स्पष्ट करते हुए, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने कहाः

"14. जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, सीमित निर्माण का पूरा आधार का अर्थ उप-धारा (4) में प्रयुक्त वाक्यांश "किसी भी संदर्भ में" है जिसका अर्थ है "किसी भी संदर्भ के दौरान" है। लेकिन इसका ऐसा अर्थ किसी भी सामान्य अर्थ में अकाट्य नही है। पूर्वसर्ग "में" का उपयोग विभिन्न संदर्भों में किया जाता है और विभिन्न अर्थभेद के अर्थ को व्यक्त करने में सक्षम है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में इस पूर्वसर्ग के अर्थभेदों में से एक अर्थ कुछ संबंध में संदर्भ व्यक्त करना, संदर्भ या संबंध में; वाद में, मामले में कार्य में या अधिकार-क्षेत्र के मामले में, या प्रांत के मामले में।विशेष तौर पर उस क्षेत्र या विभाग के संबंध या संदर्भ में उपयोग किया जाता है, जिसके विषय में एक विशेषता या गुणवत्ता कहा जाता है।

धारा 31 की उप-धारा (4) के संदर्भ में, यह यह सोचना उचित है कि "किसी भी संदर्भ में" वाक्यांश का अर्थ "संदर्भ के मामले में" है। अधिनियम में "संदर्भ" शब्द को "मध्यस्थता के संदर्भ" के रूप में परिभाषित किया गया है, इसलिए "संदर्भ में" वाक्यांश का अर्थ "मध्यस्थता के संदर्भ के मामले में" होगा। इसलिए वाक्यांश "एक संदर्भ में" मध्यस्थता पूरा होने और अंतिम निर्णय दिए जाने के बाद पहले किए गए आवेदन को भी शामिल करने

के लिए पर्याप्त व्यापक है, और हमारी राय में यह संदर्भ में इसका सही निर्माण है।इसलिए, हमारी राय है कि धारा 31 (4) उस अदालत में अनन्य अधिकार क्षेत्र निहित करेगी जिसमें अधिनियम की धारा 14 के तहत पहले पुरस्कार दाखिल करने के लिए आवेदन किया गया है।

[जोर दिया गया]

31. **कुंभा मावजी** के अनुपात का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ने से पहले, यह उल्लेख करना आवश्यक है कि **सुरजीत सिंह अटवाल** (ऊपर) में क्या कहा गया है। उक्त मामले में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ इस मुद्दे पर विचार कर रही थी कि क्या अधिनियम की धारा 34 के तहत अपीलार्थी द्वारा किया गया आवेदन अधिनियम की धारा 31 (4) के अर्थ के भीतर के संदर्भ में एक आवेदन था। कुंभ मावजी पर निर्भरता रखते हुए न्यायालय ने कहाः

> "5. ... मध्यस्थता अधिनियम में अलग-अलग धाराएँ हैं जिनके तहत कोई भी संदर्भ किए जाने से पहले ही आवेदन किया जाना है। उदाहरण के लिए, धारा 8 में न्यायालय की शक्ति का उपयोग करने के लिए एक आवेदन का प्रावधान है, जब पक्ष एक मध्यस्थ की नियुक्ति में सहमत होने में विफल रहते हैं, जिसे संदर्भ किया जा सकता है। इसलिए भी धारा 20 में न्यायालय में मध्यस्थता समझौता दायर करने के लिए एक आवेदन का प्रावधान है ताकि एक मध्यस्थ को संदर्भ का आदेश दिया जा सके। ये स्पष्ट रूप से संदर्भ के पूर्ववर्ती अनुप्रयोग हैं लेकिन वे एक संदर्भ की ओर ले जाते हैं। इस तरह के आवेदन निस्संदेह "संदर्भ के मामले में" आवेदन हैं और अधिनियम की धारा 31 (4) के क्षेत्र के अन्तर्गत आ सकते है। भले ही ये आवेदन किसी भी संदर्भ के होने से पहले किए गए हों। लेकिन धारा 34 के तहत एक आवेदन स्पष्ट रूप से उसी श्रेणी से संबंधित आवेदन नहीं है। इसका किसी संदर्भ से कोई

लेना-देना नहीं है। इसका उद्देश्य केवल एक मध्यस्थता समझौते को प्रभावी बनाना और किसी पक्ष को अपने स्वयं के समझौते के विपरीत अदालत जाने से रोकना है कि विवाद का निर्णय एक निजी न्यायाधिकरण द्वारा किया जाना है।

और फिर सेः

"6. इसलिए, हम इस बात पर विचार नहीं करते हैं कि धारा 34 के तहत मुकदमे पर रोक लगाने के लिए कुंभ मावजी मामले में इस न्यायालय द्वारा एक आवेदन इस वाक्यांश को दिए गए व्यापक अर्थ के भीतर भी एक संदर्भ में एक आवेदन है। धारा 31 (4) द्वारा लगाई गई दूसरी शर्त यह है कि स्थगन के लिए आवेदन उस न्यायालय को किया जाना चाहिए जो इस पर विचारण के लिए सक्षम हो। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 34 में "न्यायिक प्राधिकरण" अभिव्यक्ति का उपयोग किया गया है। यह धारा न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन का उपबंध करता है जिसके समक्ष उस कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए कानूनी कार्यवाही लंबित है। कानूनी कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए एक न्यायिक प्राधिकरण के लिए एक आवेदन, जिसके समक्ष यह लंबित है, मध्यस्थता अधिनियम के तहत एक न्यायिक प्राधिकरण के लिए एक आवेदन है जो इस पर विचारण के लिए सक्षम है।लेकिन न्यायिक प्राधिकरण को आवश्यक रूप से संदर्भ के विषय-वस्तु को बनाने वाले प्रश्न का निर्णय करने के लिए धारा 2 (सी) के तहत सक्षम अदालत होने की आवश्यकता नहीं है।मध्यस्थता समझौते का एक पक्ष किसी ऐसे न्यायालय में मुकदमा दायर करने का विकल्प चुन सकता है जिसके पास मामले में जाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और केवल इसलिए कि ऐसे मुकदमे में प्रतिवादी को मुकदमे पर रोक लगाने के लिए अधिनियम की धारा 34 के तहत उस न्यायालय में आवेदन करना पड़ता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि वह न्यायालय जिसके पास अन्यथा मामले में कोई अधिकार

क्षेत्र नहीं है, अधिनियम की धारा 2 (सी) के अर्थ के भीतर एक न्यायालय बन जाता है। हमने जो विचार व्यक्त किया है, वह छोटे लाल शामलाल बनाम कूच बिहार ऑयल मिल्स लिमिटेड 17; ब्रिटानिया बिल्डिंग एंड आयरन कंपनी लिमिटेड बनाम गोबिंद चंद्र भट्टाचार्य 18 और बसंती कॉटन मिल्स लिमिटेड बनाम.ढींगरा ब्रदर्स के निर्णयों से सिद्ध होता है।

32. उपरोक्त दो निर्णयों से यह स्पष्ट है कि कुंभ मावजी में "संदर्भ" को व्यापक अर्थ दिया गया है और इसका पालन सुरजीत सिंह अटवाल (ऊपर) में किया गया है। **गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) में दो न्यायाधीशों की पीठ ने **कुंभा मावजी** में निर्णय को यह कहकर प्रतिष्ठित किया कि पहले के मामले में अनुपात का मतलब यह नहीं होगा कि अदालत में संदर्भ के लिए पहले की कार्यवाही उस अदालत को ऐसी अधिकारिता प्रदान करेगी जो धारा 31 (4) में निहित प्रावधान को अन्य रूप से प्रदान करती है। हम बाद के चरण में उपरोक्त सिद्धांत का थोड़ा उल्लेख करेंगे। इससे पहले, हम कुछ अन्य घोषणाओं का उल्लेख करना चाहेंगे जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि कार्यवाही पर उसका नियंत्रण है तो केवल सर्वोच्च न्यायालय का ही अधिकार क्षेत्र है। उन्होंने पहले **सेठ और स्केल्टन** (ऊपर) का उल्लेख किया है। श्री विश्वनाथन, विद्वान वरिष्ठ वकील, ने **नव भारत कंस्ट्रक्शन कंपनी (ऊपर) और बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड** (ऊपर) से प्रेरणा ली है। **बर्न स्टैण्डर्ड कं. लि.** में, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लेख किया जिसमें निर्देश जारी किए गए थे कि मध्यस्थ इस न्यायालय में निर्णय दायर करेगा और कोई भी आवेदन जो मध्यस्थता कार्यवाही के समापन के दौरान या उसके बाद दायर करने के लिए आवश्यक हो सकता है, केवल इस न्यायालय में दायर किया जाएगा और तदनुसार, यह निर्देश दिया कि धारा 34 के तहत आपत्ति याचिका केवल इसी अदालत में दायर की जा सकती थी। यह आदेश 1996 के अधिनियम की धारा 34 के संदर्भ में पारित किया गया था। जैसा कि हम

उक्त आदेश से देखते हैं, कोई स्वतंत्रत कारण नहीं बताए गए हैं, लेकिन आदेश पूरी तरह से पहले के आदेश के आधार पर पारित किया गया है।

33. इस मोड़ पर, हम एसोसिएटेड कॉन्ट्रैक्टर्स (उपरोक्त) में हाल के निर्णय का तुरंत उल्लेख करना उचित समझते है। तीन-न्यायाधीशों की पीठ 1996 के अधिनियम की धारा 2 (1) (ई) के तहत "न्यायालय" का अर्थ पर विचार कर रही थी। संदर्भ का उत्तर देते हुए, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने 1996 के अधिनियम की धारा 2 (1) (ई) और धारा 42 का उल्लेख किया और उस संदर्भ में, उसने अभिनिर्धारित किया हैः .

"20. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि धारा 2(1)(ई) में "न्यायालय" की परिभाषा 1940 के अधिनियम की धारा 2(सी) में निहित अपने पूर्ववर्ती से भौतिक रूप से अलग है। इसके कई कारण हैं कि धारा 2(1)(ई) के अर्थ के भीतर उच्चतम न्यायालय को क्यो नही “न्यायालय” माना जा सकता है, भले ही वह मध्यस्थता कार्यवाही पर अपना अधिकार बनाए रखे। सबसे पहले, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, परिभाषा संपूर्ण है और दो संभावित न्यायालयों में से केवल एक को मान्यता देती है जो धारा 2(1)(ई) के प्रयोजन हेतु “न्यायालय” हो सकते है। दूसरा, 1940 के अधिनियम के तहत, अभिव्यक्ति “दीवानी अदालत" को एक अपीलीय न्यायालय को शामिल करने हेतु काफी व्यापक माना गया है। और इसलिए इसमें सर्वोच्च न्यायालय भी शामिल होगा जैसा कि 1940 के अधिनियम के तहत उपरोक्त दो निर्णयों में माना गया था। भले ही यह प्रस्ताव स्वयं संदेह के लिए खुला है, क्योंकि अनुच्छेद 136 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाला सर्वोच्च न्यायालय एक साधारण अपीलीय न्यायालय नहीं है, यह कहने के लिए पर्याप्त है कि यह कारण भी वर्तमान परिभाषा के तहत प्राप्त नहीं होता है, जो या तो प्रधान दीवानी न्यायालय या मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय की बात करता है।तीसरा, यदि

किसी आवेदन को सीधे उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत करना पड़ता है, तो अधिनियम की धारा 37 के तहत प्रदान की गई धारा 9 और 34 के तहत आवेदनों के संबंध में अब तक उपलब्ध अपील उपलब्ध नहीं होगी। अनुच्छेद 136 के तहत उच्चतम न्यायालय में कोई और अपील भी उपलब्ध नहीं होगी। एकमात्र अन्य तर्क जो संभवतः दिया जा सकता है वह यह है कि सभी परिभाषा खंड इसके विपरीत संदर्भ के अधीन हैं। धारा 42 का संदर्भ किसी भी प्रकार से इस निष्कर्ष पर नही लाता है कि धारा 42 में "न्यायालय" शब्द, जैसा परिभाषित किया गया है के अर्थ में लेना चाहिए, बनिस्वत की अन्यथा धारा 42 का संदर्भ केवल यह देखने के लिए है कि मध्यस्थता समझौतों के संबंध में सभी आवेदनों पर केवल अकेले एक अदालत का अधिकार क्षेत्र होगा जो संदर्भ किसी भी तरह से सर्वोच्च न्यायालय को धारा 42 के अर्थ के भीतर एक "न्यायालय" नही बनाता है। यह उचित रूप से कहा गया है कि मंच के नियम की सुविधा की धारा 42 द्वारा स्पष्ट रूप से बाहर रखा गया है 42 देखें जे. एस. डब्ल्यू. स्टील लिमिटेड बनाम जिंदल प्रैक्सएयर ऑक्सीजन कं. लिमिटेड 20, एस. सी. सी. पी. 542, पैरा 59 पर)।1940 के अधिनियम की धारा 31 (4) भी से स्पष्ट रूप से धारा 42 से अलग है कि अभिव्यक्ति इसे विचारित करने के सक्षम न्यायालय में किया गया है का इसे मनाने के लिए सक्षम अदालत में बनाया गया" धारा 42 में जगह नहीं मिलती है। यह इस कारण से है कि, धारा 2(1)(ई) के तहत, सक्षम न्यायालय को मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले प्रधान दीवानी न्यायालय या मूल दीवानी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के रूप में निर्धारित किया जाता है, और कोई अन्य न्यायालय नहीं। इन सभी कारणों से हमारा मानना है कि 1940 के अधिनियम के तहत निर्णय 1996 के अधिनियम के तहत प्राप्त नहीं होंगे, और धारा 42 के प्रयोजनों हेतु उच्चतम न्यायालय “न्यायालय” नही हो सकता है।

21. एक अन्य प्रश्न जो उत्पन्न हो सकता है वह यह है कि क्या धारा 42 मध्यस्थता कार्यवाही समाप्त होने के बाद लागू होती है। यह हमारे द्वारा पूर्व में ही अभिनिर्धारित किया गया है कि अभिव्यक्ति "मध्यस्थता समझौते के संबंध में" शब्द यह व्यापक महत्व का होगा और मध्यस्थता कार्यवाही समाप्त होने से पहले, दौरान या बाद में सभी आवेदनों को स्वीकार करेगा। कुंभा मावजी बनाम भारत का अधिराज्य के मामले में, जो एक पूर्वनिर्णित मामला है, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष जो प्रश्न उठा वह यह था कि क्या अधिनियम 1940 के धारा 31(4) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति “किसी भी संदर्भ में” उन मामलों को शामिल करेगा जो मध्यस्थता कार्यवाहियों के समाप्ति के पश्चात के है एवं एक पुरस्कार के रुप में समाप्त हो गए है। यह माना गया कि "किसी भी संदर्भ में" शब्दों का अर्थ "संदर्भ के दौरान" नहीं लिया जा सकता है, लेकिन इसका अर्थ "संदर्भ के मामले में" और कि ऐसा वाक्यांश काफी व्यापक और काफी विस्तृत है जो मध्यस्थता पूरी होने और अंतिम निर्णय दिए जाने के बाद किए गए आवेदन को शामिल करने के लिए पर्याप्त है (देंखे एस सी आर पी.पी. 891-93ः ए आई आर पी पी. 317-18, कंडिका 13-16) AIR pp. 317-18, पैरा 13-16)।जैसा कि ऊपर देखा गया है, धारा 42 में उपयोग की गई अभिव्यक्ति “मध्यस्थता समझौते के संबंध में " व्यापक है एवं निश्चित रुप से ऐसे आवेदनों को शामिल करेगा।

हमने उक्त निर्णय का व्यापक रूप से उल्लेख किया है क्योंकि हम उसमें बताए गए सिद्धांत से सहमत हैं और बर्न स्टैंडर्ड कं. लिमिटेड (ऊपर) में जो कहा गया है उसे स्वीकार करने का कोई कारण नही है।

34. **नव भारत निर्माण कंपनी** (ऊपर) में, इस न्यायालय ने इस न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश को अंपायर के रूप में नियुक्त किया था और यह भी माना था कि

संदर्भ नया नहीं था, बल्कि अधिनियम के तहत पिछली कार्यवाही की निरंतरता थी। इसके अलावा, अदालत ने इस अदालत में पुरस्कार दायर करने का निर्देश दिया। विद्वान मध्यस्थ द्वारा पुरस्कार पारित किए जाने के बाद, राजस्थान राज्य ने न्यायालय का पुरस्कार नियम बनाने के लिए एक आवेदन दायर किया और उसी समय, प्रतिवादी ने अधिनियम की धारा 30 और 33 के तहत याचिका दायर की और इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को चुनौती देते हुए प्रतिवादी द्वारा अंतर्वर्ती आवेदन दायर किया गया ताकि पुरस्कार को पूर्ण बनाया जा सके और इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में अंपायर द्वारा पारित पुरस्कार के खिलाफ प्रतिवादी द्वारा उठाई गई आपत्ति पर भी विचार किया जा सके। प्रत्यर्थी के रुख को पलटते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

> "11. इस न्यायालय के दिनांक 4-10-2005 के फैसले इस न्यायालय के कार्यात्मक भाग द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि, जैसा कि यहाँ पहले उल्लेख किया गया है, कि अंपायर द्वारा पारित किया जाने वाला पुरस्कार इस न्यायालय में दायर किया जाना चाहिए और दूसरा, निर्णय में ही यह स्पष्ट किया गया था कि यह एक नए संदर्भ का मामला नहीं था, बल्कि पहले की कार्यवाही की निरंतरता थी और इस प्रकार अधिनियम जारी रहेगा। मैकडर्मोट इंटरनेशनल इंक में, इस न्यायालय के तीन-न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि चूंकि मध्यस्थ को इस न्यायालय में अपना निर्णय दाखिल करने का निर्देश दिया गया था, इसलिए पुरस्कार को न्यायालय का एवं नियम बनाने हेतु अपीलार्थी का आवेदन, उसके आपत्तियों के साथ-साथ उसकी विचारणीयता हेतु केवल इस न्यायालय में दायर किया जाना चाहिए और इसलिए, इस न्यायालय को अपीलार्थी के आवेदन और प्रतिवादी द्वारा दायर आपत्तियों पर भी विचार करने का अधिकार क्षेत्र है।

35. ऐसा कहने के बाद, न्यायालय ने फैसला सुनाया कि अधिनियम की धारा 30 और 33 के तहत दायर आपत्तियों से निपटने का अधिकार क्षेत्र उसके पास है।

36. हम तुरंत यह स्पष्ट कर सकते हैं कि **नव भारत कंस्ट्रक्शन कंपनी (ऊपर)** में, मामला अधिनियम की धारा 20 के तहत संदर्भ से संबंधित।

37. वर्तमान में, हम **सेठ और स्केल्टन** (ऊपर) में तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दिए गए तर्क का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ सकते हैं। उक्त मामले में न्यायालय ने यह विचार व्यक्त किया कि न्यायालय द्वारा पारित आदेश और आगे की कार्यवाही में निहित निर्देश इस न्यायालय द्वारा मध्यस्थता कार्यवाही पर पूर्ण नियंत्रण बनाए रखने का संकेत देते हैं। **सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार** (ऊपर) पर निर्भरता रखते हुए, न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित कियाः

> "21. सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार बनाम सी. टी. ए. सी. टी. सुब्रमण्यम चेट्टियार में सवाल उठा कि क्या विचारण न्यायालय को मुकदमे के विषय-वस्तु को मध्यस्थ को भेजने का अधिकार क्षेत्र था जब मुकदमे में पारित डिक्री उच्च न्यायालय के समक्ष अपील लंबित थी। धारा 21 के आधार पर, इस न्यायालय के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि निचली अदालत द्वारा दिया गया संदर्भ, जब अपील लंबित थी, और इस तरह के संदर्भ के परिणामस्वरूप दिया गया पुरस्कार, दोनों अमान्य थे क्योंकि निचली अदालत संदर्भ का आदेश देने में सक्षम नहीं थी। इस न्यायालय ने उक्त तर्क को खारिज कर दिया और अधिनियम की धारा 2 (सी) और 21 के संदर्भ के बाद अभिनिर्धारित किया कि धारा 21 में पायी गयी अभिव्यक्ति "न्यायालय" में अपीलीय न्यायालय भी शामिल है, जिसके समक्ष कार्यवाही मुकदमे की निरंतरता है। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि धारा 21 में "वाद" शब्द में अपीलीय कार्यवाही भी शामिल है। हमारी राय में, उपरोक्त निर्णय के सादृश्य को लागू करते हुए,

“अधिनियम की धारा 14 (2) में आने वाला अभिव्यक्ति "न्यायालय" को उस संदर्भ में समझना होगा जिसमें यह होता है। इस प्रकार समझा जाए तो यह इस प्रकार है कि यह न्यायालय धारा 14 (2) के तहत न्यायालय है जहां मध्यस्थता पुरस्कार वैध रूप से दायर किया जा सकता है।"

38. इस पृष्ठभूमि में, यह जानना आवश्यक है कि **सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार** (उपरोक्त) में सटीक रूप से क्या कहा गया है। निर्णय में वर्णित तथ्य यह हैं कि प्रतिवादी द्वारा उसमें विभाजन का मुकदमा दायर किया गया था। विचार के लिए जो प्रश्न सामने आया वह मध्यस्थों द्वारा दिए गए निर्णय की वैधता से संबंधित था, जिनके पास पक्षों के बीच विवाद के मामले वर्तमान मुकदमेबाजी के लंबित रहने तक भेजे गए थे।मुकदमा सुनवाई के लिए तय किया गया था। अपीलार्थी द्वारा दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII नियम 9 के तहत एक अतिरिक्त लिखित बयान दाखिल करने की अनुमति के लिए एक आवेदन दायर किया गया था। उक्त आवेदन को विचारण न्यायाधीश द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि उसने एक नई और असंगत याचिका दायर करने की मांग की थी। उक्त निर्णय के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील दायर की गई थी। उच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि आयुक्त के समक्ष सभी कार्यवाही पर रोक लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है और यदि अंतिम आदेश के पारित होने पर ही रोक लगा दी जाए तो यह पर्याप्त होगा। उक्त आदेश पारित होने के बाद, आयुक्त ने अपनी जांच शुरू की, लेकिन इससे पहले कि जांच में कोई प्रगति हो, पक्षों ने अपने विवादों को मध्यस्थता के लिए भेजने का फैसला किया। चूंकि मुकदमे की अन्य कार्यवाही पर रोक नहीं लगाई गई थी, इसलिए पक्षकारों द्वारा विचारण न्यायाधीश के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया था जिसमें मामले को मध्यस्थता के लिए भेजने का अनुरोध किया गया था। निचली अदालत ने उक्त आवेदन को स्वीकार कर लिया और प्रमाणित किया कि प्रस्तावित संदर्भ नाबालिगों के लाभ के लिए था और इस प्रकार निर्दिष्ट "वाद में विवाद के मामले और उससे जुड़े सभी मामले और

कार्यवाही" पक्षकारों द्वारा नामित दो मध्यस्थों द्वारा निर्धारण। मध्यस्थों ने अपनी कार्यवाही शुरू की और एक अंतरिम पुरस्कार पारित किया जो निचली अदालत के समक्ष दायर किया गया था। इस आधार पर पुरस्कार को रद्द करने के लिए एक आपत्ति दायर की गई थी कि संदर्भ खराब था और मध्यस्थ कदाचार के दोषी थे। इसके अलावा, कई अन्य आधार भी उठाए गए। उक्त आपत्तियों को दूसरी तरफ से विरोध किया गया और पुरस्कार के संदर्भ में आदेश पारित करने की प्रार्थना की गई। विचारण न्यायाधीश ने मध्यस्थों के कथित कदाचार के संबंध में आक्षेपकर्ता के रुख को खारिज कर दिया और आगे पाया कि इस तर्क में कोई सार नहीं था कि संदर्भ अनुचित प्रभाव या जबरदस्ती का परिणाम था।तथापि, विचारण न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि मध्यस्थों के प्रति संदर्भ जिसमें वाद में विवाद के मामले शामिल हैं, में बर्मा में अचल संपत्तियों के संबंध में स्वामित्व के प्रश्न शामिल हैं और इसलिए यह अधिकार क्षेत्र के बिना और अमान्य है। अपील को प्राथमिकता दिए जाने पर, उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी (इस न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी) की अपील को स्वीकार कर लिया और उच्च न्यायालय के समक्ष मध्यस्थों के कदाचार और संदर्भ की अयोग्यता के बारे में अपीलकर्ताओं द्वारा उठाई गई याचिकाओं के संबंध में निचली अदालत के निष्कर्षों की पुष्टि इस आधार पर की कि यह जबरदस्ती और अनुचित प्रभाव का परिणाम था। इसने आगे निचली अदालत के इस निष्कर्ष को आगे उलट दिया कि यद्यपि संदर्भ और पुरस्कार अमान्य थे, वे बर्मा में अचल संपत्तियों से संबंधित थे और उच्च न्यायालय द्वारा पारित स्थगन आदेश का उल्लंघन करते थे।यह ध्यान देने योग्य है कि उच्च न्यायालय के समक्ष यह आग्रह किया गया था कि निर्देश का आदेश अधिनियम की धारा 21 के तहत अमान्य था और निचली अदालत निर्देश देने के लिए सक्षम नहीं थी, लेकिन उक्त तर्क को उच्च न्यायालय द्वारा नकार दिया गया था। नतीजतन, उच्च न्यायालय ने पाया कि संदर्भ और पुरस्कार वैध थे और तदनुसार, उसने निर्देश दिया कि पुरस्कार के संदर्भ में एक डिक्री पारित की जानी चाहिए।

39. इस न्यायालय ने विश्लेषण के दौरान, संदर्भ की वैधता के खिलाफ आपत्ति पर विचार किया क्योंकि उस पर उसके समक्ष गंभीरता से दबाव डाला गया था। इसने इस निवेदन पर ध्यान दिया कि निर्देश और पुरस्कार अमान्य थे क्योंकि निचली अदालत अधिनियम की धारा 21 के तहत निर्देश का आदेश देने में सक्षम नहीं थी। न्यायालय ने धारा 21 का उल्लेख किया और कहा कि संदर्भ के लिए लिखित आवेदन करने से पहले दो शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए, अर्थात्, (i) वाद के सभी इच्छुक पक्षों को एक संदर्भ प्राप्त करने के लिए सहमत होना चाहिए, और (ii) संदर्भ का विषय वाद के पक्षों के बीच मतभेद का कोई भी मामला होना चाहिए। तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि धारा के निर्माण में कोई कठिनाई नहीं है, बल्कि दोनों शर्तों के निहितार्थ का विश्लेषण करना और “न्यायालय” शब्द के मुख्यार्थ के निर्धारण में माँग करने में कठिनाईयाँ उत्पन्न इसने सवाल उठाया कि प्रासंगिक प्रावधान में "न्यायालय" शब्द का क्या अर्थ हैं। उसमें अपीलार्थियों के अनुसार, "न्यायालय" का अर्थ अधिनियम की धारा 2 (सी) द्वारा परिभाषित न्यायालय है। उसमें अपीलार्थियों की ओर से तर्क दिया गया था कि निर्देश का आदेश केवल निचली अदालत द्वारा दिया जा सकता है न कि अपीलीय अदालत द्वारा और इसलिए, मुकदमे का फैसला होने और निचली अदालत के फैसले के अनुसार एक डिक्री तैयार होने के बाद कोई निर्देश नहीं हो सकता है।जैसा कि उक्त मामले में, निर्णय निचली अदालत द्वारा दिया गया था और उसके अनुसार एक प्रारंभिक डिक्री तैयार की गई थी, संदर्भ का कोई आदेश देने की कोई गुंजाइश नहीं थी।प्रस्तुतिकरण पर विचार करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

> “35. क्या संदर्भ में "न्यायालय" का अर्थ विचारण न्यायालय है? इस निर्माण को धारा द्वारा निर्धारित शर्तों में से किसी एक के साथ आसानी से मिलान नहीं किया जा सकता है। निचली अदालत में एक डिक्री तैयार किए जाने और उसके खिलाफ एक अपील प्रस्तुत किए जाने के बाद, अपील में कार्यवाही मुकदमे की निरंतरता है और आम तौर पर, जैसा कि दीवानी प्रक्रिया संहिता की धारा 107 द्वारा निर्धारित किया

गया है, अपीलीय अदालत के पास निचली अदालत की सभी शक्तियां हैं और वे लगभग उतने ही कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं जो निचली अदालत को दिए गए हैं और लगाए गए हैं।यदि ऐसा है, तो अपील के लंबित रहने के दौरान, क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि वाद में पक्षकारों के बीच मतभेद के मामले अपील में विवाद के मामले बने रहते हैं?अपील का निर्णय अपील के तहत डिक्री की प्रकृति और प्रभाव को भौतिक रूप से प्रभावित कर सकता है; और इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलीय न्यायालय के निर्णय के लिए उठाए गए सभी बिंदु मुकदमे में उनके बीच अंतर के बिंदु हो सकते हैं और अक्सर होते हैं; और, उस अर्थ में, निचली अदालत के फैसले के बावजूद, अपीलीय अदालत के समक्ष पक्षकारों के बीच मुकदमे में अंतर के समान बिंदु बने रहते हैं।यदि ऐसी अपील के लंबित रहने के दौरान इच्छुक पक्ष इस बात पर सहमत होते हैं कि अपील में उनके बीच किसी भी मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा जाना चाहिए, तो धारा की पहली दो शर्तों को पूरा किया जाता है। जब धारा 21 अधिनियमित की गई थी तो क्या विधानमंडल का इरादा था कि अपील के लंबित रहने के दौरान कोई संदर्भ नहीं दिया जाना चाहिए, भले ही पक्ष धारा द्वारा निर्धारित पहली दो शर्तों को पूरा कर लें?.

40. धारा 21 को लागू करने के उद्देश्य और उक्त धारा के पीछे के इरादे का आगे विश्लेषण करते हुए, न्यायालय ने फैसला सुनायाः

"36. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि धारा 21 में उपयोग किए गए शब्द काफी हद तक पहले की संहिता की अनुसूची II, पैरा 1 में उपयोग किए गए शब्दों के समान हैं, इस दलील को बनाए रखना मुश्किल होगा कि धारा 21 के अधिनियमन का उद्देश्य मौजूदा प्रथा से इस तरह का हिंसक विचलन लाना था।यदि विधानमंडल का यही इरादा होता तो वह धारा 21 में उपयोग किए गए शब्दों में उचित परिवर्तन

करता। इसलिए, “न्यायालय” शब्द की व्याख्या केवल विचारण न्यायालय के अर्थ में नही की जा सकती है, जैसा कि अपीलार्थियों द्वारा तर्क दिया गया है। “न्यायालय की व्याख्या केवल अर्थ में नहीं की जा सकती है विचारण न्यायालय, जैसा कि अपीलार्थियों द्वारा प्रतिवाद किया गया है। इसी तरह, "वाद" शब्द का अर्थ संकीर्ण अर्थ में केवल "वाद" एवं अपील नही समझा जा सकता है। हमारी राय में, धारा 21 में "अदालत" में अपीलीय अदालत की कार्यवाही शामिल है जिसके समक्ष आम तौर पर मुकदमे की निरंतरता के रूप में मान्यता प्राप्त है; और "वाद" शब्द में ऐसी अपीलीय कार्यवाहियाँ शामिल होंगी। "सूट" शब्द में सुक एच अपीलीय शब्द शामिल होगा। हम यह भी जोड़ सकते हैं कि जबकि अधिनियम की धारा 41 इस दृष्टिकोण के अनुरूप है, कोई अन्य धारा इसका विरोध करते हुए इसके खिलाफ नहीं है।

41. आगे बढ़ते हुए, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार व्यक्त कियाः

"37. … हमारी राय में धारा की योजना इसमें उपयोग किए गए "निर्णय" शब्द को योग्य बनाने वाले शब्द को जोड़ने की अनुमति नही देता है। "निर्णय सुनाए जाने से पहले किसी भी समय" अभिव्यक्ति का उद्देश्य केवल समय की वह सीमा दिखाना है जिसके बाद कोई संदर्भ नहीं दिया जा सकता है, और वह सीमा तब पहुँच जाती है जब अंतिम निर्णय सुनाया जाता है। यह प्रावधान कि "मुकदमे में पक्षों के बीच अंतर में कोई भी बात मध्यस्थता को संदर्भित किया जा सकता है" को आगे सीमाओं के अधीन नही किया जा सकता है, कि उक्त मामले को मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है। यदि यह न्यायालय के निर्णय के दायरे में नही आता है। धारा का प्रभाव इतना नंबर प्रतीत होता है कि जब तक न्यायालय द्वारा अंतिम निर्णय नहीं सुनाया जाता है, तब तक पक्षकारों के बीच अंतर के कुछ या सभी मामलों को मध्यस्थता के लिए भेजा जा सकता है बशर्ते वे इसके बारे में सहमत हों।यदि अपीलीय स्तर पर भी

कोई निर्देश दिया जा सकता है, जब पक्षकारों के बीच मतभेद वाले सभी मामले विचारण न्यायालय के अंतिम निर्णय द्वारा शामिल किए जाते हैं, तो यह समझना मुश्किल है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान निर्देश दिए जाने की अनुमति देने में कोई और शर्त क्यों लगाई जानी चाहिए कि केवल ऐसे अंतर के मामलों को ही संदर्भित किया जा सकता है जो न्यायालय के अंतर्वर्ती निर्णय द्वारा शामिल नहीं किए जाते हैं। हम तदनुसार यह मानेंगे कि मुकदमे के पक्षकारों के बीच मतभेद के किसी भी मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करने के लिए निचली अदालत के लिए यह खुला है बशर्ते वे सहमत हों और अदालत द्वारा मुकदमे में अपना अंतिम निर्णय देने से पहले किसी भी समय आवेदन करें।.

42. हम लाभ के साथ यह भी नोट कर सकते हैं कि न्यायालय ने एक और जटिलता को संबोधित किया क्योंकि अपीलें भौतिक समय पर उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थीं।जो मुद्दा उठा वह यह था कि ऐसा कौन सा न्यायालय है जिसके पास ऐसे मामले में निर्देश का आदेश देने का अधिकार क्षेत्र था। न्यायालय ने राय दी कि यह अभिनिर्धारित करने में कोई कठिनाई नहीं है कि यदि मुकदमा निचली अदालत में लंबित है और उसके द्वारा अंतिम निर्णय नहीं सुनाया गया है, तो यह निचली अदालत है जो संदर्भ का आदेश देने में सक्षम है।इसी तरह, यदि एक मुकदमे का फैसला किया गया है, अंतिम निर्णय दे दिया गया है और निचली अदालत द्वारा एक डिक्री तैयार की गई है और इसके खिलाफ कोई अपील नहीं की गई है, तो मामला समाप्त हो जाता है और धारा 21 को लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। आगे बढ़ते हुए, न्यायालय ने कहा कि यदि वाद का निर्धारण करने वाली डिक्री निचली अदालत द्वारा तैयार की गई है और अपील के लंबित रहने के दौरान इसे अपीलीय अदालत में ले जाया जाता है, तो यह अपीलीय अदालत है जो धारा 21 के तहत कार्य करने के लिए सक्षम है। इसने आगे कहा कि इन श्रेणियों के मामलों में कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन जहां एक प्रारंभिक डिक्री तैयार की गई है और इसके खिलाफ अपील

दायर की गई है, जटिलता इस तथ्य के कारण उत्पन्न होती है कि पक्षों के बीच विवाद दो अदालतों के समक्ष कानूनी रूप से लंबित हैं। प्रारंभिक डिक्री के विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित रहने पर एवं प्रारंभिक निर्णय एवं डिक्री के दायरे में आने वाले पक्षों के मतभेद के मामले अपीलीय न्यायालय के समक्ष लंबित रहने पर, उसके अनुसरण में एवं उसके परिणामस्वरुप पक्षों के मध्य कार्यवाहियाँ की जानी होगी। उस संदर्भ में, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

> "39. ... ऐसी स्थिति में तार्किक रूप से यह दृष्टिकोण लेना संभव है कि प्रारंभिक डिक्री के बाद की कार्यवाही के संबंध में विवादों के संबंध में मध्यस्थता का निर्देश निचली अदालत द्वारा दिया जा सकता है, जबकि विचारण न्यायालय के प्रारंभिक निर्णय द्वारा समाप्त किए गए सभी मामलों के संबंध में मध्यस्थता जो अपीलीय न्यायालय के समक्ष लंबित हैं, अपीलीय न्यायालय द्वारा किए जा सकते हैं; लेकिन ऐसा तार्किक दृष्टिकोण धारा 21 के साथ पूरी तरह से सुसंगत नहीं है और किसी भी कठिनाई को हल करने में मदद करने के बजाय यह व्यवहार में अनावश्यक जटिलताओं को पैदा कर सकता है। अधिकांश मामलों में अंतिम डिक्री की कार्यवाही में निचली अदालत के समक्ष विवाद के मामले अपील में विवाद के मामलों से इतने अटूट रूप से जुड़े होते हैं कि प्रभावी मध्यस्थता का आदेश केवल एक संदर्भ द्वारा दिया जा सकता है न कि दो द्वारा। इसलिए, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए इच्छुक हैं कि इस तरह के मामले में जहां दोनों न्यायालयों के पास आंशिक रूप से विवादग्रस्त मामले हैं, दोनों पक्षों के बीच विवादग्रस्त सभी मामलों के संबंध में निर्देश का आदेश देने के लिए किसी भी न्यायालय के लिए खुला होगा। यह तर्क दिया जाता है कि इस तरह के निर्माण पर निर्णयों का टकराव उत्पन्न हो सकता है यदि मध्यस्थों के दो समूह नियुक्त किए जा सकते हैं।हमें नहीं लगता कि इस तरह का संघर्ष होने की संभावना है। यदि पक्षकार विचारण न्यायालय में जाते हैं और निर्देश

का आदेश प्राप्त करते हैं तो वे अनिवार्य रूप से अपीलीय कार्यवाही को वापस लेने या उस पर रोक लगाने के उचित आदेश मांगेंगे; दूसरी ओर, यदि वे अपीलीय न्यायालय से इसी तरह का निर्देश का आदेश प्राप्त करते हैं तो वे इसी तरह के कारणों से विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए आवेदन करेंगे। वर्तमान मामले में प्रारंभिक डिक्री के बाद की कार्यवाही निचली अदालत के समक्ष लंबित थी और इसलिए हमें यह मानना चाहिए कि निचली अदालत धारा 21 के तहत कार्य करने के लिए सक्षम थी। उस दृष्टिकोण पर धारा 21 के प्रावधानों के आधार पर संदर्भ की वैधता के खिलाफ आपत्ति सफल नही हो सकती।

43. न्यायालय के उपरोक्त विश्लेषण की समुचित सराहना की जानी चाहिए। हमें ऐसा लगता है कि उक्त मामले में तथ्य काफी अलग थे और न्यायालय ने जो सिद्धांत स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है, वह कहता है कि अपीलीय न्यायालय में प्रथम दृष्टांत का न्यायालय शामिल है और अधिनियम की धारा 21 के तहत संदर्भ की शक्ति का उपयोग अभी भी कुछ परिस्थितियों में अपीलीय न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। उक्त निर्णय में जो प्रस्ताव रखा गया है, उससे हमारा कोई मतभेद नहीं है। उक्त निर्णय का सादृश्य अधिनियम की धारा 14(2) में आने वाली अभिव्यक्ति "न्यायालय" को समझने हेतु अनुप्रयोग किया गया है। यह सच है कि **सेठ और स्केल्टन** (ऊपर) में, विद्वान न्यायाधीशों ने उस संदर्भ को बताते हुए इसे योग्य बनाया है जिसमें यह होता है।अपना विचारशील विचार देते हुए हम यह सोचने को तैयार है कि **सी.टी.ए.सी.टी. नथियप्पा चेट्टियार** (ऊपर) से लिए गए सादृश्य एवं वरिष्ठ न्यायालयों को पूर्ववर्ती शर्त संलग्न करते हुए आवेदित करना कि यदि वरिष्ठ न्यायालय मध्यस्थता कार्यवाहियों पर नियंत्रण बनाए रखता है, तो इसे अनन्य अधिकार क्षेत्र होगा, न तो सही है एवं न ही स्वीकार होगा। **सी. टी. ए. सी. टी. नचियप्पा चेट्टियार** में फैसले को ध्यानपूर्वक पढ़ने पर हमें ऐसा कुछ भी नहीं मिलता है जिसे सीधे पुरस्कार से निपटने के लिए उच्च न्यायालयों को शक्ति प्रदान करने के लिए दूरस्थ रूप से

जोड़ा जा सके। यदि कोई समानता है, तो उसे एक विशेष स्तर पर रोकना होगा। स्पष्ट करने के लिए, किसी दिए गए मामले में, पक्ष मध्यस्थता के लिए सहमत हो सकते हैं और अदालत इसे मध्यस्थता के लिए भेजना उचित समझ सकती है। लेकिन इस सिद्धांत का विस्तार करने के लिए कि न्यायालय ने मध्यस्थ की नियुक्ति के बाद निर्देश जारी किए थे और वह इसके नियंत्रण में था और इसलिए, पुरस्कार केवल वरिष्ठ न्यायालय के समक्ष दायर किया जा सकता है ताकि इसे न्यायालय का नियम बनाया जा सके जैसा कि सेठ और स्केल्टन में आयोजित किया गया है, **सी. टी. ए. सी.टी. नथियप्पा चेट्टियारा** में बताए गए सिद्धांत की सही समझ से नही आता है।

44. गुरु नानक फाउंडेशन (ऊपर), जैसा कि हमने पहले वर्णित किया है, "न्यायालय" की परिभाषा को संदर्भित करता है और धारा 14 की उप-धारा (2) और धारा 31 की उप-धारा (4) का विश्लेषण करता है और यह विचार रखता है कि धारा 31 की उप-धारा (4) न केवल उस न्यायालय को अनन्य अधिकारिता प्रदान करती है जिसके लिए किसी भी संदर्भ में आवेदन किया जाता है, बल्कि साथ ही किसी अन्य न्यायालय की अधिकारिता को भी हटा देती है। जिसका अपने आप में अधिकार क्षेत्र भी हो सकता है। इस बात को और स्पष्ट करने के लिए पीठ ने कहा हैः

> “15. किसी विशेष न्यायालय जिसमें अधिनिर्णय के विषय-वस्तु को छुते हुए एक मुकदमा दायर करने की आवश्यकता धारा 14(2) के साथ पठित धारा 31(1) के तहत एक पुरस्कार दाखिल करने के लिए होती, लेकिन यदि अधिनियम के तहत संदर्भ में कोई आवेदन किसी अन्य न्यायालय में दायर किया गया है जो उस आवेदन को स्वीकार करने के लिए सक्षम था, तो पहले उल्लिखित न्यायालय के अपवर्जन के लिए, धारा 31(4) में निहित प्रावधान के प्रबल प्रभाव को देखते हुए, केवल बाद वाले न्यायालय को ही अधिनिर्णय पर विचार करने का अधिकार होगा और अधिनिर्णय को

केवल उसी न्यायालय में दायर करना होगा और किसी अन्य न्यायालय को उस पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र नहीं होगा।

और फिर सेः

"16. धारा 14 की उप-धारा (2) में निहित प्रावधान को न तो अनुचित माना जाएगा और न ही धारा 31 की उप-धारा (4) पर किए गए निर्माण पर वैमनस्य पैदा किया जाएगा। क्योंकि अभिव्यक्ति "अदालत" जैसा कि धारा 2(सी) में परिभाषित किया गया है का तब तक पालन करना होगा जब तक कि जिस विषय या संदर्भ में इसका उपयोग किया जाता है, उसमें कुछ भी अप्रिय न हो। इसलिए, धारा 14 (2) में उपयोग की गई अभिव्यक्ति "न्यायालय" इस पृष्ठभूमि में समझना होगा।

उपरोक्त तर्क, वास्तव में इस प्रस्ताव को स्थापित करने की नींव नहीं रखता है कि यदि कोई वरिष्ठ न्यायालय मध्यस्थता कार्यवाही पर नियंत्रण रखता है तो पुरस्कार केवल उक्त न्यायालय के समक्ष दायर किया जा सकता है।

45. इस मोड़ पर, हम अधिनियम की धारा 2 (सी) में 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा का उल्लेख कर सकते हैं। वह इस प्रकार हैः धारा 2 (सी) के अनुसार 'न्यायालय' का अर्थ एक दीवानी न्यायालय है, जिसे संदर्भ का विषय-वस्तु बनाने वाले प्रश्न के निर्णय का क्षेत्राधिकार है, यदि वह किसी मुकदमे का विषय-वस्तु था, लेकिन धारा 21 के तहत एक लघु कारण न्यायालय शामिल नही करता है, सिर्फ मध्यस्थता कार्यवाहियों के प्रयोजनार्थ।

46. धारा 14 मध्यस्थ द्वारा हस्ताक्षरित और दाखिल किए जाने वाले पुरस्कार से संबंधित है। धारा 14 (2) "न्यायालय" शब्द को संदर्भित करती है। उप-धारा (2) इस प्रकार हैः

"(2) मध्यस्थ या अंपायर, मध्यस्थता समझौते के किसी पक्षकार या ऐसे पक्षकार के अधीन दावा करने वाले किसी व्यक्ति का अनुरोध या यदि न्यायालय द्वारा ऐसा निर्देश दिया गया हो और मध्यस्थता और अधिनिर्णय के संबंध में देय शुल्क और प्रभारों और अधिनिर्णय दाखिल करने की लागत और प्रभारों के भुगतान पर, किसी भी बयान और दस्तावेजों के साथ, जो उनके समक्ष लिए गए और साबित किए गए हों, पुरस्कार या इसकी एक हस्ताक्षरित प्रति को न्यायालय में दायर करने का कारण बने, और इसके बाद न्यायालय पक्षकारों को पुरस्कार दाखिल करने की सूचना देगा।

47. धारा 31 न्यायालयों की अधिकारिता से संबंधित है। उप-धारा (1) में कहा गया है कि इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, उस मामले में अधिकारिता रखने वाले किसी भी न्यायालय में एक पुरस्कार दायर किया जा सकता है जिससे संदर्भ संबंधित है। उप-धारा (2) में कहा गया है कि इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित किए जाने के अलावा, तत्काल प्रभाव में किसी अन्य कानून में कुछ भी निहित होने के बावजूद, समझौते के पक्षों या उनके तहत दावा करने वाले व्यक्तियों के बीच किसी पुरस्कार या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के बारे में सभी प्रश्नों का निर्णय उस अदालत द्वारा किया जाएगा जिसमें समझौते के तहत पुरस्कार दायर किया गया है, या दायर किया जा सकता है, और किसी अन्य अदालत द्वारा नहीं। उप-धारा (4) जो एक गैर-अबाधित खंड से शुरू होती है, निम्नानुसार हैः

"(4) कुछ भी शामिल होने के बावजूद इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में कहीं और कुछ भी विहित होने के बावजुद, जहां किसी संदर्भ में इस अधिनियम के तहत कोई आवेदन उस न्यायालय में किया गया है जो उसे स्वीकार करने के लिए सक्षम है, केवल उस न्यायालय को मध्यस्थता कार्यवाही पर अधिकारिता होगी और उस संदर्भ से उत्पन्न होने वाले सभी बाद के आवेदन और

मध्यस्थता कार्यवाही उस न्यायालय में की जाएगी एवं किसी अन्य न्यायालय में नही।

48. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, उक्त प्रावधान की व्याख्या **कुंभ मावजी** (ऊपर) में की गई है। उक्त प्रावधान की व्याख्या करते हुए, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि उक्त उप-धारा का उद्देश्य स्पष्ट रूप से उप-धारा (3) से आगे जाना है, जो कि केवल संबंधित पक्ष पर में सभी आवेदन दायर करने का दायित्व नहीं डालता है। ऐसे आवेदनों के लिए विशेष अधिकार क्षेत्र को उस न्यायालय में निहित करने के लिए एक न्यायालय में सभी आवेदन दायर करने का दायित्व नही डालता है जिसमें पहला आवेदन पहले ही किया जा चुका है। तीन-न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दी गई व्याख्या इस आशय की है कि धारा 31 के एक व्यापक दृष्टिकोण पर कि जहां पहली उप-धारा उस न्यायालय की अधिकारिता का निर्धारण करती है जिसमें एक पुरस्कार दायर किया जा सकता है, उप-धारा (2), (3) और (4) का उद्देश्य उस अधिकार क्षेत्र को तीन अलग-अलग तरीकों से प्रभावी बनाना है, (1) एक न्यायालय को किसी पुरस्कार या मध्यस्थता समझौते की वैधता, प्रभाव या अस्तित्व के संबंध में सभी प्रश्नों से निपटने का अधिकार सौंपकर, (2) संबंधित व्यक्तियों को एक न्यायालय में मध्यस्थता कार्यवाही के संचालन या अन्यथा ऐसी कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले सभी आवेदनों को दायर करने का दायित्व देकर, और (3) उस न्यायालय में अनन्य अधिकार क्षेत्र निहित करके जिसमें मामले से संबंधित पहला आवेदन होता है। न्यायालय का आगे का विश्लेषण यह है कि उप-धारा (4) का संदर्भ यह इंगित करता प्रतीत होता है कि उप-धारा का उद्देश्य मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक ही सीमित नहीं था। न्यायालय को प्रभावी एवं अनन्य अधिकारिता से आवरण की आवश्यकता और तीनों प्रावधानों के संयुक्त संचालन द्वारा संघर्ष और हाथापाई से बचने के लिए समान रूप से आवश्यक है कि क्या प्रश्न मध्यस्थता के लंबित होने के दौरान या मध्यस्थता पूरा होने के बाद या मध्यस्थता शुरू होने से पहले उत्पन्न होता है। ऐसा कोई

कल्पनीय कारण नहीं है कि विधायिका ने उप-धारा (4) के संचालन को केवल मध्यस्थता के लंबित रहने के दौरान किए गए आवेदनों तक सीमित रखने का इरादा किया है क्योंकि वाक्यांश "किसी भी मामले के संदर्भ में" को "किसी भी संदर्भ के दौरान" के अर्थ के रूप में लिया जाना है।

49. जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, न्यायालय ने वाक्यांश "किसी भी संदर्भ में", "एक मामले या एक संदर्भ का पाठयक्रम" का संकेत करता है। जिसका अर्थ मध्यस्थता के संदर्भ के मामले में होगा और इसमें वह चरण भी शामिल होगा जब अंतिम निर्णय दिया जाता है। **गुरु नानक फाउंडेशन** में 'न्यायालय' शब्द के अर्थ के संबंध में अधिनियम की धारा 31 (4) का उल्लेख करके और यह आधार मानते हुए कि सर्वोच्च न्यायालय भी पहली बार का न्यायालय बन सकता है, अगर उसने कार्यवाही पर नियंत्रण बनाए रखा है, अलग किया गया है। "न्यायालय" शब्द की परिभाषा का शब्दकोश खंड में अवलोकन पर एवं अधिनियम की धारा 31 (4) में प्रयुक्त 'न्यायालय' शब्द का अर्थ और प्रावधानों के संदर्भ में उसी की सराहना करते हुए और अधिनियम की योजना पर भी ध्यान देते हुए, हम पाते हैं कि गुरु नानक फाउंडेशन (उपरोक्त) में रखा गया निर्माण एक मौलिक भ्रांति से ग्रस्त है। अधिनियम की धारा 31 (4) में उपयोग की जाने वाली भाषा गैर-अस्थाई खंड से शुरू होती है। प्रावधान के उक्त भाग को पाठ्य संदर्भ में समझना होगा क्योंकि मुख्य रूप से प्रावधान एक सक्षम करने वाला है और वास्तविक इरादा जो अभिव्यंजक भाषा के माध्यम से व्यक्त किया जाता है, वह यह है कि जहां अधिनियम के तहत किसी संदर्भ में कोई आवेदन किया गया है, उस न्यायालय के संबंध में जिसके पास किसी आवेदन को स्वीकार करने की क्षमता है, केवल उस न्यायालय के पास मध्यस्थता कार्यवाही पर अधिकार क्षेत्र होगा। उक्त प्रावधान के पीछे का उद्देश्य अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में टकराव से बचना और अधिनियम की योजना को ध्यान में रखते हुए अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय की निश्चितता के इरादे को लागू करना है, जिसका उद्देश्य मध्यस्थता की प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाना और पुरस्कार के साथ की

प्रक्रिया की अंतिमता को देखना है। इसलिए, यह स्वीकार करना मुश्किल है कि सर्वोच्च न्यायालय मूल अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर सकता है, केवल कार्यवाही पर नियंत्रण के कारण, क्योंकि मूल अधिकार क्षेत्र संविधान के अनुच्छेद 32 और 131 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान किया गया है।यह भी ध्यान देने योग्य है कि संविधान के अनुच्छेद 262 में उल्लिखित विवाद के संबंध में उक्त मूल अधिकार क्षेत्र इस न्यायालय के लिए उपलब्ध नहीं है। **कर्नाटक राज्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य 21,** तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने अनुच्छेद 32 की व्यापकता और संविधान के अनुच्छेद 131 के तहत परिकल्पित सर्वोच्च न्यायालय के मूल अधिकार क्षेत्र की अवधारणा का विश्लेषण करने और अनुच्छेद 262 के तहत प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण करने के बाद कहा है कि अनुच्छेद 32 के तहत प्रदत्त प्राधिकरण की अपनी सीमाएं हैं जब अनुच्छेद 262 के तहत मुकदमा लागू होता है।संविधान ने संविधान में विवादों के समाधान के लिए तंत्र प्रदान नहीं किया है, लेकिन संसद को शिकायतों के संबंध में अधिकार क्षेत्र के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय की शक्ति को बाहर करने के लिए कानून बनाने का अधिकार दिया है। या ऐसे विवाद जिनका उल्लेख अनुच्छेद 262 (1) में मिलता है। इसके बाद, न्यायालय ने उड़ीसा राज्य बनाम भारत सरकार और अन्य 22 और नदियों का नेटवर्कक के अधिकारियो को संदर्भित किया। **नदियाँ को नेटवर्किंग में, रे में (ऊपर), न्यायालय ने फैसला सुनाया कि अंतर-राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 की धारा 11** (संक्षेप में,“1956 का अधिनियम")" किसी भी नदी में पानी का उपयोग, वितरण और नियंत्रण" अभिव्यक्ति का उपयोग करता है और वे 1956 के अधिनियम की धारा 3 के तहत गठित न्यायाधिकरण को प्रदत्त शक्ति के दायरे के निर्धारण में प्रमुख शब्द हैं। यदि कोई मामला इन तीन महत्वपूर्ण शब्दों के दायरे से बाहर आता है, तो किसी भी जल विवाद के संबंध में अदालतों के अधिकार क्षेत्र को हटाने में 1956 के अधिनियम की धारा 11 की शक्ति, जिसे अन्यथा न्यायाधिकरण को भेजा जाना है, का किसी भी तरह से उपयोग नहीं होगा।इस प्रकार किसी न्यायालय में किसी राज्य

द्वारा शुरू की गई कानूनी कार्रवाई की स्थिरता की कसौटी यह होगी कि क्या उसमें उठाए गए मुद्दे जल के उपयोग, वितरण और नियंत्रण के तरीके के निर्णय के लिए किसी न्यायाधिकरण को संदर्भित किए जा सकते हैं।

50. यह ध्यान दिया जाए कि उक्त मामले में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने राय दी कि न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय की संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत जांच की जा सकती है और अपील करने के लिए विशेष अनुमति बनाए रखी जा सकती है। उपरोक्त निर्णय को विस्तार से संदर्भित करने का उद्देश्य यह दिखाना है कि संविधान द्वारा इस न्यायालय को मूल अधिकार क्षेत्र कहाँ प्रदान किया गया है और कहाँ यह वर्जित है।

51. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, जो प्रश्न उठाया जाना आवश्यक है, वह यह है कि क्या यह न्यायालय अभिव्यक्ति "मध्यस्थता कार्यवाही पर नियंत्रण रखें" मूल अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर सकते हैं। जैसा कि पहले संकेत दिया गया है, न्यायालय ने अधिनियम की धारा 31(4) में प्रयुक्त न्यायालय शब्द की व्याख्या करके अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर लिया है। हमने पहले से ही यह अभिनिर्धारित किया गया है कि व्याख्या विधानमंडल के प्रावधान और इरादे में उपयोग की गई भाषा के अनुरूप नहीं है। हमारे लिए यह स्पष्ट है कि संदर्भ पर विचार करने के लिए सक्षम अदालत के पास पुरस्कार या किसी भी वाद के पुरस्कार कार्यवाही पर आपत्तियों से निपटने का अधिकार क्षेत्र होगा।

52. एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा जो विचार के लिए उत्पन्न होता है वह यह है कि क्या न्यायालय, इस तरह के मूल अधिकार क्षेत्र को ग्रहण करके, पक्ष को एक अपील को प्राथमिकता देने से वंचित कर सकता है जो वैधानिक रूप से प्रदान की गई है। **भारत कोकिंग कोल लिमिटेड** में यह इस प्रकार देखा गया हैः

"8. अब यह एक घिसा-पिटा कानून है कि जब भी किसी कानून के तहत किसी शब्द को परिभाषित किया गया है, तो उसे सामान्य रूप से लागू किया जाना चाहिए।

हालाँकि, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि व्याख्या खंड “जब तक कि विषय और संदर्भ में कुछ भी अप्रिय न हो "शब्दों से प्रारंभ की गई हो तो दी गई स्थितियों में इस न्यायालय को यह मत देने का नेतृत्व कर सकता है कि विधायिका का एक अलग अर्थ था। (महाराष्ट्र राज्य बनाम भारतीय चिकित्सा संघ देखें और पांडे एंड कंपनी बिल्डर्स (पी) लिमिटेड बनामबिहार राज्य)

9. इस तरह के प्रश्न का निर्धारण करते समय, न्यायालय को आम तौर पर फिर से अपील करने के पक्षकार के अधिकार को संरक्षित करना चाहिए। अपील का अधिकार एक मूल्यवान अधिकार है और जब तक कोई ठोस कारण मौजूद नहीं हैं, तब तक एक वादी को इससे वंचित नहीं किया जाना चाहिए।यह एक वैधानिक अधिकार है।

53. यह उल्लेख करने योग्य है कि उक्त मामले में दो-न्यायाधीशों की पीठ ने तथ्यों के आधार पर गुरु नानक फाउंडेशन को प्रतिष्ठित किया था। लेकिन अपील करने के पक्षकार के अधिकार को बनाए रखने पर जोर दिया गया है। इस संदर्भ में श्री सिन्हा ने हमारा ध्यान **गरिकापति वीराया** (उपरोक्त) में संविधान पीठ का निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है जो यह निर्धारित करता है कि एक उपाय, वाद, अपील और दूसरी अपील की कानूनी खोज वास्तव में एक आंतरिक एकता से जुड़ी कार्यवाही की एक श्रृंखला में कदम हैं और इन्हें एक कानूनी कार्यवाही के रूप में माना जाना चाहिए और अपील का अधिकार केवल प्रक्रिया का मामला नहीं है, बल्कि एक मूल अधिकार है।यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि अपील का अधिकार एक निहित अधिकार है और वरिष्ठ न्यायालय में प्रवेश करने का ऐसा अधिकार वादी को प्राप्त होता है और यह उस तारीख को और उस तारीख से मौजूद है जब मुकदमा शुरू होता है और हालांकि इसका वास्तव में प्रयोग तब किया जा सकता है जब प्रतिकूल निर्णय घोषित किया जाता है, ऐसे अधिकार को वाद या कार्यवाही शुरू

होने की तारीख पर प्रचलित कानून द्वारा शासित किया जाना है न कि उस कानून द्वारा जो इसके निर्णय की तारीख या अपील दायर करने की तारीख पर प्रचलित है और अपील के उक्त निहित अधिकार को केवल बाद के अधिनियम द्वारा लिया जा सकता है, यदि वह ऐसा स्पष्ट रूप से या आवश्यक इरादे से प्रदान करता है और अन्यथा नहीं।

54. संविधान पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांत ग्राफिक रूप से उजागर करता है कि अपील करने का अधिकार एक निहित अधिकार है और ऐसा अधिकार मुकदमा उस तारीख पर एवं से प्रारंभ होता है और उक्त अधिकार को केवल बाद के अधिनियम द्वारा लिया जा सकता है, यदि यह स्पष्ट रूप से या आवश्यक इरादे से प्रदान करता है और अन्यथा नहीं। इस संदर्भ में, हमने **ए. आर. अंतुले** (ऊपर) में भी प्राधिकरण की सराहना की गई है। **प्रेम चांद गर्ग और एक अन्य बनाम आबकारी आयुक्त, यू. पी. और अन्य** के संदर्भ में उक्त मामले में उस पर भरोसा करते हुए न्यायाधीश सब्यसाची मुखर्जी (जैसा कि तत्समय उनके स्वामी थे) ने कहाः

“50. … यह तथ्य कि नियम विवेकाधीन था, स्थिति को नहीं बदला। यद्यपि अनुच्छेद 142 (1) सर्वोच्च न्यायालय को पक्षों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए कोई भी आदेश पारित करने का अधिकार देता है, न्यायालय संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के साथ असंगत आदेश नहीं दे सकता है। अनुच्छेद 142 (1) और अनुच्छेद 32 के बीच विसंगति का कोई सवाल ही नहीं उठा। गजेंद्रगडकर, न्यायाधीश ने इस न्यायालय के अधिकांश न्यायाधीशों की ओर से बोलते हुए कहा कि अनुच्छेद 142 (1) इस न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 32 के प्रावधानों का उल्लंघन करने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करता है।न ही अनुच्छेद 145 ने इस न्यायालय को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की, जो इसे मौलिक अधिकार के प्रावधानों का उल्लंघन करने का अधिकार देता है।रिपोर्ट के पृष्ठ 899 पर, न्यायमूर्ति गजेंद्रगडकर ने दोहराया कि इस न्यायालय की शक्तियां निस्संदेह बहुत

व्यापक हैं और उनका इरादा है और "हमेशा न्याय के हित में प्रयोग किया जाएगा"।लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस न्यायालय द्वारा एक आदेश दिया जा सकता है जो संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के साथ असंगत है। इस बात पर जोर दिया गया कि पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए यह न्यायालय जो आदेश दे सकता है, वह न केवल संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के अनुरूप होना चाहिए, बल्कि यह प्रासंगिक वैधानिक कानूनों के मूल प्रावधानों के साथ भी असंगत नहीं हो सकता है। (जोर दिया गया) अतः न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है कि अनुच्छेद 142 (1) इस न्यायालय को ऐसी शक्तियां प्रदान करता है जो अनुच्छेद 32 के प्रावधानों का उल्लंघन कर सकता है।

55. उक्त निर्णय के पैराग्राफ 91 में, सहमत राय में, यह इस प्रकार कहा गया हैः

"91. कानून में यह तय स्थिति है कि अदालतों का अधिकार क्षेत्र केवल देश के कानून से आता है और इसका उपयोग अन्यथा नहीं किया जा सकता है। जहाँ तक इस देश की स्थिति का संबंध है, अधिकारिता प्रदान करना या तो संविधान के प्रावधानों या विधायिका द्वारा अधिनियमित विशिष्ट कानूनों द्वारा संभव है। उदाहरण के लिए, अनुच्छेद 129 उच्चतम न्यायालय को अपनी अवमानना के लिए दंडित करने की शक्ति सहित अभिलेख न्यायालय की सभी शक्तियों को प्रदान करता है। अनुच्छेद 131, 132, 133, 134, 135, 137, 138 और 139 उच्चतम न्यायालय को विभिन्न अधिकारिता प्रदान करते हैं जबकि अनुच्छेद 225, 226, 227, 228 और 230 उच्च न्यायालयों को अधिकारिता प्रदान करने से संबंधित हैं।विशिष्ट कानून द्वारा अधिकार क्षेत्र प्रदान करने के उदाहरण बहुत आम हैं। आपराधिक और दीवानी दोनों प्रक्रिया के कानून अलग-अलग अदालतों को अधिकार क्षेत्र प्रदान करते हैं।विशेष अधिकारिता विशेष क़ानून द्वारा प्रदान की जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अधिकारिता का

प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब संविधान में या द्वारा विधानमंडल बनाए गए कानूनों में कम प्रावधान किया गया हो। इस प्रकार क्षेत्राधिकार किसी मामले से निपटने और तथ्यों में बाध्यकारी बल रखने वाला आदेश देने के लिए न्यायालय का अधिकार या शक्ति है। इस दृष्टिकोण के लिए न्यायिक राय के समर्थन में "शब्द एवं वाक्यांश" खंड 23-ए के पृष्ठ 164 पर स्थायी संस्करण को संदर्भित किया जा सकता है। खंड के पृष्ठ 174 और 175 पर आने वाले दो छोटे अंशों का उल्लेख करना उचित होगा। पृष्ठ 174 पर, कार्लाइल बनाम राष्ट्रीय तेल और विकास कंपनी में निर्णय का उल्लेख करते हुए यह कहा गया है।

> न्यायक्षेत्र सुनवाई और निर्धारण करने का अधिकार है, और इसके अस्तित्व के लिए निम्नलिखित आवश्यक हैंः (1) कानून द्वारा निर्मित एक न्यायालय, जो संगठित और बैठक है; (2) प्रश्नगत प्रकार के कारणों को सुनने और निर्धारित करने के लिए कानून द्वारा उसे दिया गया अधिकार; (3) कानून द्वारा उसे ऐसा निर्णय देने की शक्ति दी गई है जैसा कि वह प्रदान करने के लिए मानता है; (4) मामले के पक्षों पर अधिकार यदि निर्णय उन्हें व्यक्तिगत रूप से एक निर्णय के रूप में बाध्य करना है, जो वादी पर उसकी उपस्थिति और अदालत में मामले को समर्पित करने से प्राप्त होता है, और प्रतिवादी पर उसकी स्वैच्छिक उपस्थिति या उस पर प्रक्रिया की सेवा द्वारा प्राप्त होता है; (5) उस चीज़ पर अधिकार जो उसके न्यायालय के क्षेत्र के भीतर स्थित होने पर एवं निर्णय लिया जाता है। वास्तव में इसे जब्त करना यदि ले जाने के लिए उत्तरदायी है; (6) शामिल प्रश्न पर निर्णय लेने का अधिकार, जो पक्षकारों द्वारा निर्णय के लिए समर्पित किए जा रहे प्रश्न द्वारा प्राप्त किया जाता है।

56. **शिव शक्ति कूप हाउसिंग सोसाइटी, नागपुर बनाम स्वराज डेवलपर्स और अन्य 27**, यह व्यक्त किया गया है कि अपील का अधिकार वैधानिक है और जब एक क़ानून द्वारा प्रदान किया जाता है, तो यह एक निहित अधिकार बन जाता है। एक पदानुक्रमित प्रणाली में एक अपीलीय न्यायालय में निहित क्षेत्राधिकार त्रुटियां को ठीक करना है और इसलिए इसे "त्रुटियां न्यायिक क्षेत्राधिकार" कहा जाता है जैसा कि **विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में माना गया है। नाहर इंडस्ट्रियल एंटरप्राइजेज लिमिटेड बनाम हांगकांग और शंघाई बैंकिंग कॉर्पोरेशन 29** में भी इसी तरह का विचार व्यक्त किया गया है।

57. **गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) में, जैसा कि उल्लेख किया गया है। इससे पहले, दो-न्यायाधीशों की पीठ ने **गरिकापति वीराया** (ऊपर) में निर्धारित सिद्धांत को यह कहते हुए अलग किया है कि इस न्यायालय का द्वार अपीलार्थी के लिए बंद नहीं है। वास्तव में, जैसा कि कहा गया है, उसके लिए दरवाजे को पूरी तरह से खुला रखा जा रहा है ताकि वह उन सभी विवादों को उठा सके जिन्हें एक प्रारंभिक समन में कार्यवाही में उठाया जा सकता है। कानून का उपरोक्त कथन सही नहीं है क्योंकि वरिष्ठ न्यायालय से कानून में यह मानने की अपेक्षा नहीं की जाती है कि इस आधार पर अधिकारिता कि यह एक उच्चतर न्यायालय है और आगे यह राय देते हुए कि सभी विवाद खुले हैं। विधायिका ने अपने विवेक से अधिनियम की धारा 39 के तहत एक अपील प्रदान की है। केवल इसलिए कि कोई वरिष्ठ न्यायालय मध्यस्थ की नियुक्ति करता है या निर्देश जारी करता है या मध्यस्थ को इस न्यायालय में पुरस्कार दाखिल करने की आवश्यकता देकर उस पर कुछ नियंत्रण बनाए रखा है, इसे पहली बार की अदालत के रूप में नहीं माना जा सकता है क्योंकि यह 'न्यायालय' शब्द शब्दकोश खंड के साथ-साथ धारा 31(4) में प्रयुक्त 'न्यायालय' शब्द की परिभाषा के विपरीत होगा। सीधे शब्दों में कहें तो यह सिद्धांत स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह न्यायालय यह कहकर किसी वादी के अपील करने के अधिकार को कम नहीं कर सकता है कि इस न्यायालय के लिए दरवाजे खुले हैं और इसे एक मूल न्यायालय के रूप में मानने के वास्ते।

इस न्यायालय में मूल अधिकार क्षेत्र कानून में निहित होना चाहिए। जब तक यह इतना निहित नहीं है और अदालत यह नहीं मानती है, तब तक अदालत वास्तव में उस मंच को खोलता है जो विधायिका द्वारा एक वादी को प्रदान किया गया है। इसके अलावा, जैसा कि हम देखते हैं, उक्त सिद्धांत **कुंभ मावजी** में जो कहा गया है, उसके विपरीत भी है। यह ध्यान देने योग्य है कि यह न्यायालय सहमति पर एक मध्यस्थ का संदर्भ दे सकता है लेकिन इसे एक कानूनी सिद्धांत के रूप में मानना कि यह आपत्तियों को भी स्वीकार कर सकता है क्योंकि मूल न्यायालय अधिकार क्षेत्र से संबंधित एक मौलिक भ्रांति को आमंत्रित करेगा।

58. **सुरजीत सिंह अटवाल** (उपरोक्त) मामले में, तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने राय दी थी कि धारा 8 और धारा 20 के तहत आवेदन, हालांकि स्पष्ट रूप से संदर्भ के पूर्ववर्ती आवेदन, एक संदर्भ की ओर ले जाते हैं। इस तरह के हैं आवेदन निस्संदेह "संदर्भ के मामले में" आवेदन हैं और अधिनियम की धारा 31 (4) के दायरे में आ सकता है, भले ही ये आवेदन किसी भी संदर्भ के होने से पहले किए गए हों। उक्त प्राधिकारी का उल्लेख करने का उद्देश्य यह है कि **कुंभ मावजी** (ऊपर) में बताए गए सिद्धांत को **सुरजीत सिंह अटवाल** (ऊपर) में विस्तृत किया गया है। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जिस न्यायालय के पास पहले आवेदन पर विचार करने का अधिकार क्षेत्र है, वह इस तथ्य से निर्धारित होता है कि किस न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र है और वह अधिकार क्षेत्र बरकरार रखता है।इस संबंध में एक उदाहरण दिया जा सकता है। जब अधिनियम के तहत मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की जाती है और मामले को उच्च न्यायालय या उस मामले के लिए सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है और अंततः एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है और कुछ निर्देश जारी किए जाते हैं, यह कहना अनुचित और अनुपयुक्त होगा कि वरिष्ठ न्यायालय के पास अधिनियम की धारा 30 और 33 के तहत दायर आपत्तियों से निपटने का अधिकार क्षेत्र

है। किसी कानून के तहत प्रदत्त न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को स्थानांतरित करने या विषय में एक अलग तरीके से वरिष्ठ न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण लचीला बन जाता है।

59. इस प्रकार विश्लेषण किए जाने पर हम इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि **सैथ एवं स्केल्टन** (उपरोक्त) एवं **गुरु नानक फाउंडेशन** (ऊपर) कानून की सही स्थिति निर्धारित नही करते है और तदनुसार, उन्हें खारिज कर दिया जाता है। कोई भी अन्य निर्णय जो उक्त निर्णयों के आधार पर कानून को बताता है, उसे भी खारिज कर दिया जाता है।

60. ऐसा कहने के बाद, हम मामले को उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने का निर्देश देते। लेकिन यह आवश्यक नहीं है क्योंकि हम पाते हैं कि अपीलार्थी-राज्य ने दीवानी न्यायालय के समक्ष आपत्ति दायर की है। यदि राज्य की आपत्ति अभिलेख पर नहीं है, तो राज्य के साथ-साथ प्रत्यर्थी को भी अपनी-अपनी आपत्तियाँ आज से तीस दिनो की भीतर दायर करने की स्वतंत्रता दी जाती है। आपत्तियों का निर्णय उनके गुण-दोष के आधार पर किया जाएगा।

61. परिणामस्वरूप, अपील का उपरोक्त शर्तों में निपटारा कर दिया जाता है। लागत के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

निधि जैन अपील का निपटारा।